आधुनिक लद्दाख के निर्माता

कुशोक बकुला रिम्पोछे

डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

प्रकाशक

जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र

नयी दिल्ली

आधुनिक लद्दाख के निर्माता कुशोक बकुला रिम्पोछे

प्रथम संस्करण : नवंबर 2017

ISBN : "9788193480816"

मूल्य : ₹ 100/-

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मुद्रण : प्रगति क्रिएशन्स्, दिल्ली

प्रकाशक :

जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र

प्रवासी भवन, 50, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नयी दिल्ली

दूरभाष : 011-23213039

वेबसाईट : www.jkstudycentre.org

विषय सूची

भूमिका

प्रथम अध्यायः **7**
भगवान बुद्ध के सोलह अर्हत और लद्दाख का सन्दर्भ

द्वितीय अध्यायः **17**
उन्नीसवें कुशोक बकुला लोबजंग थुबतन छोगनोर,
प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा

तृतीय अध्यायः **22**
जम्मू कश्मीर का भारत में विलय, पाकिस्तानी आक्रमण और
लद्दाख का प्रश्न

चतुर्थ अध्यायः **28**
राजनीति में भूमिका

पांचवा अध्यायः **63**
मंगोलिया व रूस में बौद्ध जागरण

छठा अध्यायः **77**
तिब्बत के सरोकार

सातवां अध्यायः **84**
सामाजिक समरसता

आठवां अध्यायः **95**
अन्तिम यात्रा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

भूमिका

जम्मू कश्मीर में व्याप्त वर्तमान समस्याओं को सही परिप्रेक्ष्य में जानने–बूझने के लिए उन्नीसवें कुशोक बकुला रिम्पोछे को जानना जरुरी है। वे आधुनिक लद्दाख के निर्माता कहलाते हैं और इसमें कोई अतिशयोक्ति भी नहीं है। रिम्पोछे को और राज्य की राजनीति में उनकी भूमिका को जाने बिना जम्मू कश्मीर को समझने का प्रयास एकांगी ही होगा और शायद निष्कर्ष भी असंतुलित ही हों। बकुला रिम्पोछे की सबसे बड़ी शिकायत यही थी कि जम्मू कश्मीर की चर्चा करते समय सम्बंधित पक्षों में पाकिस्तान और संयुक्त राष्ट्र संघ तक की चर्चा कुछ स्वयं–भू विशेषज्ञ करते रहते हैं लेकिन लद्दाख का जिक्र नहीं करते। यह स्थिति प्रायः अब तक बनी हुई है।

बकुला रिम्पोछे का दूसरा पक्ष उनका आध्यात्मिक पक्ष था। मंगोलिया में दस साल तक भारत के राजदूत के पद पर काम करना और वहाँ भगवान बुद्ध के बचनों की परम्परा को पुनर्स्थापित करना भी व्यापक अर्थों में उनके आध्यात्मिक क्रियाकलापों का हिस्सा था। विश्व की कूटनीति के हिसाब से भी उनकी यह भूमिका बेमिसाल है। उन्होंने आधुनिक काल में भारत–मंगोलिया के सांकृतिक सम्बंधों को जीवन्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह अतीव प्रसन्नता की बात है कि देश भर में उनकी सौवीं जयन्ती मनाने का निर्णय हुआ है। उसी के उपलक्ष्य में यह पुस्तक एक प्रकार से कुशोक बकुला रिम्पोछे को एक विनम्र श्रद्धांजलि है। लेकिन उनके समग्र योगदान का आकलन व विश्लेषण करने वाले ग्रन्थ की आवश्यकता हिन्दी जगत में फिर भी बनी रहेगी। आशा करनी चाहिए कभी न कभी उसकी पूर्ति भी होगी।

इस पुस्तक के लिए सामग्री संकलन में जम्मू कश्मीर अध्ययन केन्द्र के निदेशक और जाने–माने पत्रकार आशुतोष भटनागर की प्रमुख भूमिका रही है। देवेश खंडेलवाल ने कुशोक बकुला रिम्पोछे से सम्बंधित अनेक दस्तावेज उपलब्ध करवाए । इसके अतिरिक्त बकुला रिम्पोछे के सचिव रह चुके सोनम वांगचुक जी से भी समय–समय पर बातचीत होती रही, जिससे कुछ तथ्यों को प्रकाशन पूर्व दुरुस्त कर लिया गया। डॉ. चन्द्र प्रकाश जी के सहयोग के बिना शायद यह पुस्तक इतने कम समय में पूरी न हो पाती। सभी का हृदय से आभार। पुस्तक में अधिकांश उद्धरण सोनम वांगचुक शकपो और नवांग छेरिंग शकपो की पुस्तक से लिए गए हैं। यथास्थान इसका उल्लेख भी किया गया है। लेकिन हो सकता है कहीं असावधनीवश छूट भी गया हो, उसके लिए अग्रिम क्षमा याचना।

–**डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री**
कुलपति
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला – हिमाचल प्रदेश

19 नबम्वर 2017

प्रथम अध्याय

भगवान बुद्ध के सोलह अर्हत और लद्दाख का सन्दर्भ

बकुला का मूल नाम क्या था, इसके बारे में बता पाना तो कठिन है। बौद्ध जगत में वे बकुला के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। उनके नाम को लेकर एक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि बकुला प्रार्थना और ध्यान साधना में मग्न रहते थे। उन्होंने सभी सांसारिक सम्पत्तियों और एषणाओं का त्याग कर दिया था। वे सोने और बिछाने के लिए अब केवल पकुला घास का ही प्रयोग करते थे। पकुला का प्रयोग करने के कारण वे धीरे-धीरे सामान्य जन में बकुल या बकुला के नाम से ही जाने जाने लगे।

लेकिन उनके नाम के सम्बंध में ही प्रचलित एक दूसरी कथा ज्यादा रुचिकर है । आज से लगभग 2500 वर्ष पहले कौशाम्बी नगर में एक साधन सम्पन्न ब्राह्मण दम्पति के घर एक बालक ने जन्म लिया। एक दिन धाय बालक को नहलाने के लिए यमुना में ले गई। नहलाते समय बालक धाय के हाथ से फिसल गया और यमुना की लहरों में बह गया। वहाँ एक बड़ी मछली ने उसे निगल लिया। स्वभाविक ही माता-पिता इससे बहुत दुखी हुए। परन्तु अब किया ही क्या जा सकता था? कुछ दूर जाकर वह मछली एक मछुआरे के जाल में फँस गई। मछली इतनी भारी थी कि किसी आम आदमी में इसका दाम चुकाने की हिम्मत कहाँ ! मछुआरे ने मछली नगर में आकर एक धनाड्य ब्राह्मण व्यापारी को बेच दी। जब रसोईघर में पाचक ने मछली को चीरा तो उसमें से एक जीवित बालक निकल आया। व्यापारी दम्पती संतानहीन था। उसने बालक का लालन-पालन पुत्रवत शुरु

कर दिया। जैसे ही बालक के जीवित होने का समाचार फैला तो बालक के असली माता-पिता को भी इसकी खबर हुई। उन्होंने बच्चे को लेने के लिए राजा के पास फरियाद की । राजा ने सारा माजरा सुन कर निर्णय किया कि बालक पर दोनों परिवारों का समान अधिकार रहेगा। दोनों परिवारों का अधिकार हो जाने के कारण बालक द्विकुल कहलाया । द्विकुल यानि दो कुलों का बालक । यह द्विकुल ही बाद में बदलते हुए बकुला नाम से प्रसिद्ध हो गया।

बकुला दोनों परिवारों के लाड़-प्यार में पलने लगा । उसे जीवन के सारे सुख प्राप्त थे । उसने सब प्रकार की विद्याओं का अर्जन किया । समय आने पर उसका विवाह हुआ । बकुला का जीवन रथ सामान्य प्रकार से आगे बढ़ रहा था । बकुला अपने क्षेत्र में विलक्षण प्रतिभा के स्वामी माने जाते थे। उनकी आयु भी अस्सी साल की हो गई थी । परन्तु उनका स्वास्थ्य चमत्कारी था । अब वे संसार से उपराम रहने लगे थे । पर्वतों व अरण्यों में घूमते रहते थे । उन्हीं दिनों कपिलवस्तु के सिद्धार्थ, जो अपनी साधना और तपस्या के कारण अब बुद्ध के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे, की ख्याति चारों ओर फैल रही थी । बुद्ध के उपदेशों ओर उनके बचनों को लेकर स्थान-स्थान पर चर्चा होने लगी थी । इस परिपक्व आयु में बकुला की रुचि शाक्यमुनि बुद्ध के बचनों की ओर हुई । एक बार बकुला पर्वत पर बैठे थे । नीचे से भगवान बुद्ध जा रहे थे । शाक्यमुनि को देख कर उनके मन में उनसे मिलने की तीव्र इच्छा जागृत हुई । लेकिन यदि वे सामान्य मार्ग से नीचे उतरना शुरु करते तो शाक्यमुनि बुद्ध तब तक बहुत दूर जा चुके होते क्योंकि रास्ता लम्बा था । बुद्ध से मिलने की तीव्र इच्छा के चलते बकुला ने पर्वत शिखर से छलाँग लगा दी और बुद्ध के सामने जा पहुँचे । बुद्ध ने बकुला को अपने संघ में दीक्षित कर लिया । भिक्षु, बकुला की विलक्षण प्रतिभा से आश्चर्यचकित थे। बकुला को अपने पिछले अनेक जन्मों की कथा स्मरण थी । स्वास्थ्य तो उनका किसी युवा को भी मात करता था । उनकी तर्क

शक्ति सभी को अभिभूत करती थी । बुद्ध शाक्यमुनि ने अपने अनेकों शिष्यों में से कुछ विशिष्ट शिष्यों का चयन किया था । संघ में दीक्षित होने के आठ दिन बाद ही शाक्यमुनि ने बकुला को अपने इन चुने गए शिष्यों में शामिल कर लिया । इनकी संख्या सोलह थी । ये सभी सोलह शिष्य स्थविर या अर्हत कहलाए । संस्कृत में इन्हें अरिहंत भी कहा गया । इस प्रकार बकुला संघ में दीक्षित होते ही भगवान बुद्ध के षोडश अरिहंत समुदाय का हिस्सा बने ।

और फिर एक दिन शाक्यमुनि बुद्ध ने यह संसार छोड़ने का निर्णय कर लिया । उनके परिनिर्वाण का समय आ पहुँचा था । भगवान बुद्ध का अंतिम समय आया तो ये सभी सोलह स्थविर उनके पास उपस्थित थे । उन्होंने बुद्ध शाक्यमुनि के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि, ''हम धर्म की रक्षा के लिए तब तक संसार नहीं त्यागेंगे जब तक लोग आपकी शिक्षाओं से लाभान्वित होकर दुखों से मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेते । हम तब तक इस संसार में ही धर्म का प्रचार करते रहेंगे जब तक आप बुद्ध मैत्रेय के रुप में पुनः संसार में नहीं आ जाते ।'' ये सभी अरिहंत योग्यतम माने गए थे । ये निर्वाण के रास्ते पर जा सकते थे । आवागमन के बन्धन से ये मुक्त थे । लेकिन इन्होंने बहुजन सुखाय - बहुजन हिताय इस का त्याग किया । भगवान बुद्ध ने कहा कि ये सोलह अर्हत बुद्ध बचनों के संरक्षक होंगे । ये सोलह अर्हत या स्थविर निम्न थे-

1. अंगज Angaja (Tib. Yenlag Chung)
2. अजीत Ajita (Tib. Ma Phampa)
3. वनवासी Vanavasin (Tib. Nagnanepa)
4. महाकालिका Mahakalika (Tib. Düden Chenpo)
5. वज्रिपुत्र Vajriputra (Tib. Dorje Möbu)
6. श्रीभद्र Shribhadra (Tib. Pal Zangpo)

7. कनकवत्स Kanakavatsa (Tib. Sergyi Be'u)
8. कनक Kanaka (Tib. Serchen)
9. बकुला Bakula (Tib. Bakula)
10. राहुल Rahula, the Buddha's son (Tib. Drachen Dzin)
11. शूलपंथका Chulapanthaka (Tib. Lamtren Ten)
12. पिंडोल भारद्वाज Pindola Bharadvaja (Tib. Bharadodza Sönyom Len)
13. पंथक Panthaka (Tib. Lamchenten)
14. नागसेन Nagasena (Tib. Lüdé)
15. गोपक Gopaka (Tib. Bechepa)
16. अभेद्य Abhedya (Tib. Michepa)

धर्म की रक्षा हेतु इस मृत्युलोक में ही बने रहने का यह भीषण संकल्प लेने वाले इन सोलह स्थविरों में से एक स्थविर बकुल या बकुला भी थे। बौद्ध भित्तिचित्रों में बकुला अपने हाथ में भूरे रंग का नेवला थामे हुए हैं जो मणि-माणिक्य उगल रहा है । भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद अर्हत बकुला उत्तर दिशा यानि उत्तरकुरु की ओर बुद्ध बचनों का प्रचार करने के लिए निकले । सभी प्राणियों के प्रति करूणा, प्यार और दया का भाव रखना, छह परामिता की प्राप्ति, शून्यता का ज्ञान, पाँच इन्द्रियों पर नियंत्रण । शेष जीवन वे बुद्ध बचनों का प्रचार करते रहे परन्तु जैसा कि कहा गया है जो भी व्यक्ति इस संसार में शरीर धारण करता है, उसके शरीर का एक दिन नाश होना निश्चित है । समय आने पर इन अर्हतों ने भी अपनी जीवन-यात्र पूरी की । लेकिन अपनी प्रतिज्ञा के अनुरूप नए शरीर में वे फिर-फिर वापिस आने या अवतार धारण करने लगे । अर्हत बकुला ने भी यही किया । कहा जाता है कि देहान्त के अस्सी साल बाद बकुला ने इस संसार में फिर अवतार धाारण किया । शाक्यमुनि बुद्ध के चले जाने के बाद अब तक अर्हत बकुला ने विभिन्न समय व स्थान पर अब तक बीस बार

बोद्धिसत्व के रूप में शरीर धारण किया। ये बीस अवतार निम्न हैं –

पहला अवतार – बकुला

दूसरा अवतार – तिलोपा

तीसरा अवतार – लुईपा

चौथा अवतार – राजा देपा तेनपा, जिसका जिक्र Kadam Buchos' नामक पुस्तक में मिलता है।

पाँचवा अवतार – आर्य सुरु जो नागार्जुन का शिष्य था।

छठा अवतार – ग्यालवा चोग्यांग, जो लोपोन पद्म के पच्चीस शिष्यों में से एक था।

सातवाँ अवतार – रत्न उदाम, जो कासदुप कयूंगपो का शिष्य था।

आठवाँ अवतार – येशे दजिन, जो राजा गेदुन बांग का धर्मगुरु था।

नौवाँ अवतार– लोचावा रिंचेन सांगपो आचार्य रत्नभद्र (954–1055)

दसवाँ अवतार– गेशे चागपा थ्रिचोगई, जो कदमपा परम्परा के थे।

ग्यारहवाँ अवतार – रेचुंग दोर्जे द्राकपा (1083/4 – 1161)

बारहवाँ अवतार – स्थविर लोडरोज छोक्युंग

तेरहवाँ अवतार – महासिद्ध धर्मवज्र

चौदहवाँ अवतार – लोबजंग जिनपा, जो छठे पंचेन लामा के शिष्य थे।

पन्द्रहवां अवतार – योंदजिन येशे ग्यलछान, जो आठवें दलाईलामा के अध्यापक थे।

सोलहवां अवतार – जेतसुन नवांग जेमपेक येशे ग्याछो

सत्रहवां अवतार – कोंगचोग रंगद्रोल नईमा, जो लद्दाख के लामायुरु मठ में प्रकट हुए।

अठारहवाँ अवतार – येशे स्तनबा ग्यलछान

उन्नीसवाँ अवतार – लोबजंग थुबतन छोगनोर (1917–2003)

बीसवाँ अवतार – तेनजिंग नवांग जिगमेत वांगचुक (2005–)

अर्हत बकुला के बारे में ज्यादा जानकारियाँ तो नहीं मिलतीं लेकिन एक भोटी ग्रन्थ में बकुला का स्पष्ट उल्लेख इस प्रकार है–

उत्तर कुरु के उत्तरी संभाग में
नौ सौ अर्हतों की सभा के बीच
हाथों में नेवला थामे
आर्य स्थविर बकुला शोभायमान हैं ।

अर्हत बकुला का पहला अवतार कब पहचाना गया, यह निश्चित नहीं है। यह भी माना जाता है कि सबसे पहले बकुला के अवतार की पहचान नौंवे बकुला के रूप में ही की गई थी । उससे पहले के अवतार भूतकाल में हो चुके सिद्ध पुरुषों में से निश्चित किए गए । इसे संयोग ही कहना चाहिए कि सत्रहवें कुशोक बकुला से लेकर बीसवें कुशोक बकुला तक के अवतार लद्दाख में ही हुए हैं । कुशोक बकुला लद्दाख की बौद्ध परम्परा के गेलुग्पा सम्प्रदाय से आते हैं । इस सम्प्रदाय को लद्दाख में पीताम्बर सम्प्रदाय भी कहा जाता है, अर्थात पीला चीवर धारण करने वालों का सम्प्रदाय । इस सम्प्रदाय के लद्दाख में तीन प्रमुख मठ हैं । इनमें से एक कुशोक बकुला का साधना स्थल है और दूसरा आवास स्थान है । ये तीनों मठ क्रमशः स्पितुक या पेथुप मठ, सम्कर मठ और स्तोक मठ कहलाते हैं ।

सबसे पहले स्पितुक या पेथुप मठ । यह मठ लेह से कुछ दूरी पर सिन्धु नदी के समीप, एक पहाड़ी पर स्थित है । भोटी भाषा में स्पितुक का अर्थ है अनुकरणीय । यह नाम सचमुच इस मठ पर सटीक बैठता है । दरअसल स्पितुक गांव का नाम है । इस गाँव से लेह और उसके आसपास का विहंगम दृश्य बड़ा मनमोहन लगता है । इसका यह नामकरण लोचावा रिंचेन जांगपो आचार्य रत्नभद्र ने किया था । विहार का निर्माण ग्याहरवीं शताब्दी में हुआ था । प्रारम्भ में यह विहार वज्रयान मत की निंगमापा, शाक्या और कग्यु शाखा का केन्द्र था लेकिन पन्द्रहवीं शताब्दी तक आते

आते यह गेल्युगपा शाखा का केन्द्र बन गया । इस मठ में भोट कैलण्डर के ग्याहरवें महीने की 26 और 27 तारीख को धार्मिक नृत्य का आयोजन होता है । मठ का मुख्य मंदिर दुखांग है जो भोट शैली में निर्मित है । हाल में दोनों ओर आसन लगे हुए हैं जो ऊँचे मंच तक चले गए हैं । मंच पर एक सिंहासन है जो दलाईलामा के लिए सुरक्षित रहता है । इसके बाईं ओर वज्र भैरव की मूर्ति स्थापित है और दाईं ओर ग्यारह सिर वाली अवलोकितेश्वर की मूर्ति विराजमान है । सिंहासन के पीछे एक संकरा मार्ग अंधेरे प्रकोष्ठ की ओर जाता है जहाँ गुरु चोंगखापा और उनके दो पिण्ड विद्यमान हैं । शाक्यमुनि की एक कलात्मक मूर्ति भी शोभायमान है । ऊपर के कमरों में कई छोटे-छोटे मंदिर हैं, जिनमें से एक में छोरतेन के साथ तीन तांत्रिक मूर्तियाँ वज्र भैरव, सम्बर और गुह्यासम्जा रखी हैं । दाईं ओर दीपंकर अतिशा की मूर्ति रखी है । एक और मंदिर है जिसमें देवी तारा के इक्कीस शक्ति रूप विद्यमान हैं । इस मठ का सबसे बड़ा आकर्षण काली मंदिर है जिसकी पूजा के लिए ज्यादातर सैनिक आते हैं । कुछ लोगों का कहना है कि यह मूर्ति काली की न होकर वज्र भैरव की है लेकिन अब यह काली के रूप में ही पूजित है । इस मूर्ति के साथ-साथ महाकाल और तीन अन्य तांत्रिक देवताओं की मूर्तियाँ विद्यमान हैं । एक मूर्ति घोड़े पर सवार लामो देवी की है जिसे शक्ति की अवतार दुर्गा की मूर्ति भी कहा जाता है ।

अब सम्कर गोन्पा । स्पितुक विहार की शाखा सम्कर विहार है जिसे बकुला के प्रथम अवतार ने स्थापित किया था । यह गोन्पा कुशोक बकुला का निवास स्थान है । इसके मुख्य मंदिर में एक कोने में सिंहासन स्थापित है । मंदिर में लगभग वही मूर्तियाँ हैं जो पेथुप मठ में हैं । भीतर की भित्तियों को देवी देवताओं की मूर्तियों से सजाया गया है । द्वार पर रक्षक देवताओं की मूर्तियाँ हैं । इस मंदिर के खुले आँगन में सभाएँ भी आयोजित की जाती हैं । सम्कर मठ अपने वर्तमान स्वरूप में अठारहवें बकुला ने 1860 में बनाया था ।

और अब स्तोक मठ । स्तोक लद्दाख के शाही परिवार नमग्याल की राजधानी रहा है । इसलिए हर हमलावर का ध्यान स्तोक की ओर ही जाता रहा है और सबसे ज्यादा लूटपाट और विध्वंस भी यहीं हुआ । यही कारण है कि स्तोक के गोन्पा धीरे-धीरे अन्धेरों में गुम होते चले गए । (तीनों मठों का यह विवरण हमारा साहित्य, लद्दाख विशेषांक, 2002 के आधार पर किया गया है पेज 42-43)

अठारहवें कुशोग बकुला भी लद्दाख के पूर्व राजपरिवार से ही ताल्लुक रखते थे । कहा जाता है कि उन्हें जम्मू कश्मीर के महाराजा प्रताप सिंह ने राजकाज की समस्याओं पर बातचीत करने के लिए श्रीनगर आमंत्रित किया था । वहाँ वे एक सप्ताह राजमहल में ही रहे और प्रताप सिंह उनके साथ राज प्रबन्ध को लेकर परामर्श लेते थे । इस छोटी सी भेंट में ही महाराजा प्रताप सिंह बकुला रिम्पोछे के प्रति इतने श्रद्धावान हुए कि जब उनसे मिलने के लिए जाते तो अपना राजमुकुट उतार कर जाते । प्रताप सिंह ने बकुला रिम्पोछे से पूछा कि मैं लद्दाख की क्या सहायता कर सकता हूँ तो उन्होंने कहा कि सभी मठों पर लगाया गया राजकीय टैक्स माफ कर देना चाहिए । इससे तो राजकोष को बहुत घाटा होता । इसलिए प्रताप सिंह ने कहा कि आपके पेथुप मठ को टैक्स से मुक्त किया जा सकता है । रिम्पोछे ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा या तो सभी मठों का टैक्स माफ किया जाए या फिर किसी का भी नहीं । अन्त में महाराजा ने लद्दाख के सभी मठों को राजकीय कर से मुक्त कर दिया । यह भी कहा जाता है कि प्रताप सिंह के भाई राजा अमर सिंह के घर हरि सिंह का जन्म अठारहवें कुशोक बकुला के आशीर्वाद से ही हुआ था । यही हरि सिंह बाद में जम्मू कश्मीर के महाराजा बने । (इस प्रसंग का जिक्र नवांग छेरिंग शकपो ने कुशोक बकुला रिम्पोछे- सेंट एंड स्टेटसमैन में किया है पृष्ठ 12-13)

अठारहवें दलाई लामा के श्रीनगर आने का जिक्र अहमद शाह ने भी अपनी पुस्तक माई फोर इयर्ज इन तिब्बत में किया है, जो एक ईसाई पादरी था और ईसाई सम्प्रदाय का प्रचार करने के लिए लेह जा रहा था । वह 1894 की अप्रेल के अन्तिम सप्ताह में श्रीनगर में था । वहां वसंत बाग में उसकी भेंट कुशोक बकुला से हुई । अहमद शाह के अनुसार, 'लद्दाख में कुशोक बकुला बहुत ही महत्वपूर्ण व्यक्ति है । वह बकुला के नाम से जाना जाता है और लेह के स्पितुक मठ का मठाधीश है । यह कुशोक बकुला जंस्कार के राजा का बेटा है । बकुला ने कैप्टन रेमजे की पश्चिमी तिब्बत की बोली का शब्दकोश तैयार करने में बहुत सहायता की थी । बकुला की शिक्षा तिब्बत में हुई थी और पूरे क्षेत्र में बौद्ध दर्शन के विद्वान के नाते उनकी ख्याति है । वे इस दिशा में परम पावन दलाई लामा के सिवाय अपने क्षेत्र में किसी ऊँचाई को छू सकते हैं । निचले तिब्बत में उनकी गणना बौद्ध दर्शन के सर्वोत्तम विद्वानों में होती है । चीवर पहने हुए कुशोक बकुला का चित्र मैंने आक्स्फोर्ड के अजायबघर में भी देखा था । कुशोक बकुला अनेक बार कश्मीर आए थे । जम्मू भी गए और उन्होंने पंजाब के मुख्य शहरों का भ्रमण भी किया था । इसलिए वे आधुनिक तौर तरीकों से परिचित थे । कुशोक बकुला पच्चीस वर्ष के सुन्दर युवा थे । उनका चौड़ा माथा उनकी मेधा और बुद्धिमत्ता का प्रतीक था । वे शीत ऋतु में जंस्कार में रहते थे और ग्रीष्म ऋतु स्पितुक में बिताते थे । वे एक बहुत ही सुन्दर और कीमती कालीन पर कुर्सी डाल कर बैठे थे । पास ही पहरेदार के रूप में एक तिब्बती कुत्ता बँधा था । मुझ जैसे एक अजनबी को देख कर उसने भौंकना शुरु कर दिया । कुशोक बकुला ने उसे शान्त किया, मुझसे हाथ मिलाया और बैठने के लिए कुर्सी दी । जब ये सारी औपचारिकताएँ पूरी हो गई तो मैंने जाना कि वे पंजाबी मिश्रित उर्दू बोल रहे थे । अब मेरे पास अवसर था । बकुला संवादशील थे और मुझे ज्यादा से ज्यादा जानकारी इकठ्ठी करनी थी । मैंने उनसे पूछा कि क्या वे ईसा मसीह के बारे में जानते हैं ? यदि

जानते हैं तो कितना ? क्या ईसा मसीह के जीवन, उनके कामों या उपदेशों के बारे में तिब्बती या पाली भाषा में कोई किताब मिलती है । कुशोक बकुला ने ईमानदारी और खुले मन से इन सब का उत्तर दिया । उन्होंने कहा ईसा के बारे में हमें उतना ही पता है जितना मिशनरियां बौद्ध मठों में होने वाले उत्सवों में आकर प्रचार में बताती हैं । जहाँ तक मुझे पता है पूरे लद्दाख में तिब्बती या पाली में ईसा पर कोई किताब उपलब्ध नहीं है । मैंने उनसे मठों के पुस्तकालयों और वहाँ की पुस्तकों के बारे में पूछा । उन्होंने कहा कि प्रत्येक मठ के पुस्तकालय में दो तरह की किताबें हैं । प्रथम तो वे जो सभी मठों में हैं, जैसे भगवान बुद्ध की जीवनी और अन्य धार्मिक पुस्तकें । दूसरी पुस्तकें वे हैं जो प्रत्येक मठ के पास अलग-अलग होती हैं । जैसे मठ से ताल्लुक रखने वाले लामाओं की जीवनियाँ और उनके उपदेश इत्यादि । बकुला ने बताया कि वे श्रीनगर महाराजा प्रताप सिंह से मिलने के लिए आए हैं । ''इससे अठारहवें कुशोक बकुला के श्रीनगर व अन्य स्थानों पर जाने की जानकारी तो मिलती ही है और साथ ही स्पष्ट है कि वे आधुनिक युग के साथ कदम मिला कर भी चलते थे । कुशोक बकुला की परम्परा ने लद्दाख के इतिहास को एक नई करवट देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई ।''

द्वितीय अध्याय

उन्नीसवें कुशोक बकुला लोबजंग थुबतन छोगनोर प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा

सत्रहवें कुशोक बकुला कोनछोग रंगडोल नईमा से लेकर वर्तमान बीसवें बकुला तक के अवतार जम्मू कश्मीर के लद्दाख संभाग में ही हुए । अठारहवें अवतार लोबजंग येशे स्तनपई ग्यलछान थे । उनका जन्म लद्दाख के जंस्कार क्षेत्र में हुआ था । उनका परिनिर्वाण 1918 में अस्सी वर्ष की आयु में उनके जन्म स्थान जंस्कार घाटी में हुआ ।

''अठारहवें कुशोक बकुला के परिनिर्वाण की खबर जैसे ही लेह के पेथुप मठ पहुँची, वहाँ गहरा शोक छा गया । मठ में पूजा की गई । मठ के सभी लामाओं ने सभा करके निर्णय लिया कि परम पावन दलाई लामा से पूछा जाए कि उन्नीसवें कुशोक बकुला के भावी अवतार के समय और स्थान के बारे मार्गदर्शन करें । इसके साथ ही पेथुप मठ ने अपने प्रतिनिधि शेय मठ में लहा दोर्जे चेनमो से मिलने और तिब्बती तांत्रिकों से मिलने के लिए भेजे । तेरहवें दलाई लामा थुपतेन ग्याछो ने यह बता दिया कि उन्नीसवें दलाई लामा का जन्म हो चुका है । उन्होंने एक लद्दाखी मानचित्र की सहायता से जन्म के स्थान और उसकी दिशा के बारे में भी बताया । सभी संकेत माथो गाँव की ओर इंगित कर रहे थे । वैसे अठारहवें कुशोक बकुला स्वयं भी अपने पुनर्जन्म के बारे में संकेत कर गए थे । 19वें कुशोक बकुला की माँ जांगला राजमहल से ताल्लुक रखती थीं और अठारहवें कुशोक बकुला की बहन की बेटी थीं । यह सब जानकारियाँ एकत्रित कर पेथुप मठ के लामा माथों जाकर वहाँ के मठ के देव नारांग से मिले । उसने भी बताया

कि माथों राजवंश में जो बच्चा पैदा हुआ है, वही उन्नीसवाँ कुशोक बकुला है । देव ने उनको परामर्श दिया कि वे राजमहल में जाकर राजा और रानी को मक्खन और शुपा के उपहार भेंट करें । उन्होंने ऐसा ही किया और अपने साथ पिछले बकुला की कुछ चीजें मसलन माला और वे कपड़े जो उन्हें बहुत प्रिय थे, ले गये । वैसे भी इन भिक्षुओं में से एक भिक्षु पिछले बकुला का सेवक रह चुका था । नन्हें बालक ने जैसे ही अपने पुराने सेवक को देखा तो वह हँसता और चिल्लाता हुआ उसकी ओर दौड़ा । नन्हें बालक ने पेथुप मठ से लाई गई अपनी अन्य चीजें भी पहचान लीं और कहा ये सब मेरी हैं । जब लामाओं को यह विश्वास हो गया कि यही बालक पिछले बकुला का अवतार है तो उन्होंने यह सूचना राजा, रानी और सारे शाही परिवार को दी । यद्यपि पिछले बकुला के परिनिर्वाण के एक साल के बाद ही बकुला रिम्पोछे ने अवतार धाारण कर लिया था, तब भी इस खोज में पूरे पाँच साल लगे ।'' (नवांग छेरिंग शकपो, कुशोक बकुला रिम्पोछे – सेंट एंड स्टेटसमैन 13–14)

19 मई 1917 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन जम्मू कश्मीर में लद्दाख संभाग के मड़ठो गाँव में जन्मे इस बालक के पिता का नाम नंगवा थाये और माता का नाम येशे वड़्मो था, जो अठारहवें बकुला की भानजी थी । यह बालक लद्दाख के अन्तिम राजा छेपाल तोंडुप नमग्याल के प्रपौत्र के बेटे का बेटा था ।

उन्नीसवें कुशोक बकुला के रूप में पहचान होने के समय इस बालक की आयु छह साल थी । इसी आयु में वे बुद्ध संघ में दीक्षित हो गए। छह साल की उम्र में उनके सबसे पहले अध्यापक रिजोंग सरास रिम्पोछे लोबजंग छुलतरिम छोसफेल थे । ''उसके बाद काचेन मेरे अध्यापक बने । उन्होंने मुझे बुद्धमत की पुस्तकें पढ़ाई । तिब्बत के ताशी लहुनपो मठ के समस्त कर्मकांड मुझे सिखाए । अभिसमय और माध्यमिका की

पाठ्यपुस्तकों को कंठस्थ मैंने उसी समय किया।'' (माई लाईफ माई टाईम्स पृष्ठ 7) बकुला रिम्पोछे ने अपने बचपन के बारे में स्वयं लिखा है, ''मैं एक शरारती बच्चा था। उस समय पेथुप मठ की प्रार्थना सभा में जो चाय दी जाती थी, वह चाय सुबह-सुबह मेरे कमरे में लेकर मठ का कोई न कोई नौसिखिया भिक्षु आता था। मैं शरारतवश उसको चाबुक से मारता था। धीरे-धीरे सभी नौसिखिए भिक्षु मेरे कमरे में आने से डरने लगे। एक दिन जो नौसिखिया मेरे कमरे में चाय लेकर आया और मैंने चाबुक से उसे मारा तो उसने मेरे अध्यापक के पास जाकर मेरे बुरे व्यवहार की शिकायत कर दी। काचेन ला रिगदरोल आए और उन्होंने वह चाबुक मुझसे ले ली और उससे मुझे बुरी तरह पीटा। इससे मैंने पीटना तो बन्द कर दिया लेकिन अब जैसे ही मैं रिगदरोल को कहीं भी देखता तो बहुत डर जाता।'' (माई लाईफ माई टाईम्स पृष्ठ 7)

उसके उपरान्त 1926 में दस वर्ष की आयु हो जाने पर आपको बौद्ध दर्शन की शिक्षा के लिए तिब्बत की राजधानी ल्हासा स्थित द्रेपुंग विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु भेज दिया गया। द्रेपुंग विश्वविद्यालय ल्हासा के उस समय के तीनों विश्वविद्यालयों में से सबसे बड़ा था। तेरहवें दलाई लामा ने खंगछेन गेशे लोबजंग जुंगनेय को कुशोक बकुला का अध्यापक नियुकत किया। विश्वविद्यालय में उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का अधययन अत्यन्त निष्ठा से किया। तिब्बती विश्वविद्यालयों में बौद्ध दर्शन का एक लम्बा और कठिनसाध्य पाठ्यक्रम है। पहले दो साल प्रमाणशास्त्र का अध्ययन करना होता है। उसके उपरान्त अगले छह साल के लिए प्रज्ञापारमिता का अध्ययन शुरु होता है। प्रज्ञापारमिता के बाद दो साल के लिए माध्यमिकशास्त्र की बारी आती है। उससे अगले दो वर्ष विनयशास्त्र के अध्ययन के लिए सुरक्षित हैं। प्रत्येक साल के अन्त में सार्वजनिक परीक्षा होती है। इन पन्द्रह सालों का अध्ययन सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् विद्यार्थी तांत्रिक मठ में प्रवेश लेने का अधिकारी मान लिया जाता है।

बकुला रिम्पोछे ने यहाँ पन्द्रह वर्षो तक बौद्ध दर्शन और अन्य विषयों का गहन अध्ययन किया और पच्चीस वर्ष की आयु में गेशे की उपाधि प्राप्त की । तिब्बती विश्वविद्यालयों में गेशे की उपाधि के लिए जो परीक्षा ली जाती है उसका विश्व के अन्य विश्वविद्यालयों में कोई साम्य नहीं है । ल्हासा के तीनों विश्वविद्यालयों सेरा, गांदेन और द्रेपुंग के अध्ययनशील लामा एकत्र होते हैं । अपने-अपने विषयों के विद्वान भिक्षु तो होते ही हैं । मंच पर विभिन्न विषयों को लेकर वाद-विवाद होता है । प्रश्नों की बौछार होती है । विद्यार्थी को हर शंका का समाधान करना होता है । केवल भाषा के माध्यम से ही नहीं अपनी भाव-भंगिमाओं के माध्यम से भी । उत्तर के साथ, उत्तर में निहित भाव भी उत्तर देने वाले के चेहरे पर अभिलक्षित होना चाहिए । यह अभिनय और विद्वत्ता का मणिकांचन संयोग होता है । उससे भी बड़ी बात यह कि विजेता के चेहरे पर विजय का अभिमान परिलक्षित नहीं होना चाहिए । यही विनयशास्त्र का मूल मंत्र है । यह ज्ञान की आंतरिक यात्रा है, सांसारिक विजय पराजय की प्राप्ति नहीं ।

जिस दिन कुशोक बकुला रिम्पोछे गेशे की उपाधि की परीक्षा के लिए उपस्थित हुए वह दिन एक और लिहाज से भी महत्वपूर्ण हो गया था । जिस दीक्षान्त समारोह में उन्हें गेशे की उपाधि प्रदान की गई, उसी समय वहीं चौदहवें दलाई लामा जी का राज्याभिषेक भी सम्पन्न हुआ । विभिन्न मठों और विश्वविद्यालयों से लगभग दस हजार भिक्षु, लामा, छात्र और बौद्ध दर्शन के प्रकांड पंडित उपस्थित थे । द्रेपुंग विश्वविद्यालय के पेथुप मठ के छात्रों के लिए सम्मान का प्रश्न था । गांदेन विश्वविद्यालय के गेदुन कलयंग और द्रेपुंग विश्वविद्यालय के कुशोक बकुला शास्त्रार्थ के लिए आमने-सामने थे । तर्कों के घात-प्रतिघात हो रहे थे । प्रश्नों की बौछार होती थी । लगता था कुशोक बकुला कहीं प्रश्नों के जाल में उलझ न जायें, लेकिन जिस प्रकार तेज पवन देखते-देखते काले बादलों को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार बकुला अपने उत्तरों से प्रश्नों की बौछार को

छिन्न–भिन्न कर रहे थे । बकुला केवल प्रश्नों का उत्तर ही नहीं दे रहे थे । उन्हें परम्परा के अनुसार उत्तर के भाव के अनुरूप अभिन्य भी करना था । उनके चेहरे की भाव–भंगिमा क्षण–क्षण में बदल रही थी । कुशोक बकुला ने अपने उत्तरों से हर संशय का निराकरण किया था । वे गेशे की उपाधि के लिए उपयुक्त घोषित किए गए ।

उनकी इच्छा आगे गयुदमेद तांत्रिक मठ में प्रवेश लेने की थी । गेशे की परीक्षा के उपरान्त वे इस प्रवेश के पात्र भी हो गए थे । लेकिन उधर लद्दाख से बार–बार संदेश आने लगे । ये संदेश बकुला रिम्पोछे को वापिस लौट आने के लिए थे । जम्मू कश्मीर में स्थिति पल–प्रतिपल बदल रही थी । बकुला रिम्पोछे को मन मार कर वापिस आना पड़ा । तिब्बत सरकार ने उन्हें सम्मान प्रदान करते हुए उनके साथ कुछ लोग लद्दाख की सीमा तक भेजे । अन्ततः वे 1940 को अपने घर आ गए । अपना घर यानि अपना लद्दाख ।

तृतीय अध्याय

जम्मू कश्मीर का भारत में विलय, पाकिस्तानी आक्रमण और लद्दाख का प्रश्न

तिब्बत के द्रेपुंग विश्वविद्यालय से अपना अध्ययन पूरा कर 1940 में कुशोक बकुला रिम्पोछे लद्दाख वापिस आ गए । उन्होंने अपने परम्परागत पेथुप मठ का कार्यभार संभाला । उन्होंने मठ में अनुशासन स्थापित करने और अध्ययन–अध्यापन में कुछ परिवर्तन करने की ओर ध्यान दिया । मठ की मरम्मत का कार्य भी शेष था । उन्होंने उत्सवों के अवसर पर मठ में माँस पकाने को बन्द करवा दिया । उनकी प्राथमिकता लद्दाख के विशाल क्षेत्र में बाद्ध मठों का पुनरुद्धार करना व आम लद्दाखी को बौद्ध शिक्षा के संस्कार देना था ।

लोगों की गरीबी के चलते मठों और विहारों में भिक्षुओं की व्यवस्था नहीं थी । सैकड़ों साल पहले के बने इन मठों की शान दब गई थी और आर्थिक स्थिति खराब हो जाने पर काफी अरसे से इनकी मरम्मत भी नहीं की थी । लोगों के पास पेट भरने लायक साधन ही मुश्किल से थे तो भिक्षुओं को हाथ खोल कर दान कौन दे? 1930 में महापंडित राहुल सांकृत्यान लेह आए थे । मठों की हालत देख कर उन्होंने भी कहा था, ''लद्दाख की स्थिति इतनी निराशाजनक है कि यदि इसका सामना किसी बड़ी हलचल से न भी हुआ तो लद्दाख में से बौद्ध मत समाप्ति के कगार पर पहुँच जाएगा क्योंकि लद्दाख की जनसंख्या बहुपतित्व की प्रथा के चलते घटती जा रही है ।'' (ICCR International conference on kushok Bakula Rinpoche Saint and Statesman, page 32) लद्दाख में

बुद्ध मत को बचाने के लिए यह बड़ी हलचल अब कुशोक बकुला को ही करनी होगी ।

बकुला ने लद्दाख में आने के बाद स्वयं को इस पर्वतीय क्षेत्र के लोगों की सेवा में समर्पित कर दिया । उन्होंने लद्दाखी समाज में से बहुपति प्रथा, पशुबलि प्रथा तथा मद्य सेवन इत्यादि कुप्रथाओं की समाप्ति के लिए जन–जागरण अभियान चलाया । इसके साथ–साथ उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का अपना स्वाध्याय भी जारी रखा । आयुर्वेद में भी उनकी रुचि थी । परम्परागत बौद्ध शिक्षा के अतिरिक्त वे लद्दाखी समाज के लिए आधुनिक शिक्षा के महत्व को भी भली–भांति समझते थे । इधर कुशोग बकुला लद्दाखी समाज के उत्थान के सपनों को मूर्त रूप देने का प्रयास कर रहे थे उधर द्वितीय विश्व युद्ध के कारण दम तोड़ चुकी अर्थ व्यवस्था के चलते ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्थान में से अपना बोरिया–बिस्तर समेटने की तैयारियाँ कर रही थी । ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत अनेक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित था । ब्रिटिश इंडिया में प्रशासनिक व्यवस्था अलग थी । "रेंच इंडिया और पुर्तगाली इंडिया में अलग प्रशासनिक व्यवस्था थी । इसी प्रकार लगभग 550 भारतीय रियासतों में अपनी अलग–अलग प्रशासनिक व्यवस्थाएँ प्रचलित थीं । विदेशी शासकों ने अपनी अलग–अलग प्रशासनिक व्यवस्थाओं का मूल उद्देश्य भारत का शोषण करना रखा हुआ था । इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसी के अनुरूप प्रशासनिक व्यवस्थाएँ गढ़ी गई थीं। अधिकांश रियासतों में भारतीय मूल के शासक थे । कुछ रियासतों मसलन भोपाल, हैदराबाद में विदेशी मूल के नबाब या महाराजा थे लेकिन वहाँ की प्रशासनिक व्यवस्था कम से कम लोकतांत्रिक तो नहीं थी । अंग्रेजों के चले जाने के बाद पूरे देश के लिए एक ही प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित होगी, ऐसी चर्चा शुरु हो गई थी । वैसे तो इसके संकेत भारत सरकार अधिनियम 1935 से ही मिलने शुरु हो गए थे । लद्दाख को इन नए परिवर्तनों के लिए तैयार करना था ताकि यहाँ के लोगों के हितों की अवहेलना न हो सके ।

1940 से लेकर 1947 तक प्रकारान्तर से कुशोक बकुला ने पूरे लद्दाख में घूम-घूम कर इसी की पूर्वपीठिका तैयार की । कुशोक बकुला रिम्पोछे ने अनेक कष्ट उठाकर लद्दाख के हर एक गाँव की यात्रा की। अपनी यात्राओं के दौरान वे लोगों को सामाजिक बुराइयों यथा बहुपति प्रथा, पशु-बलि, लोगों के बीच भेद-भाव आदि को समाप्त करने के लिए कहते थे । सामूहिक पूजा के अवसर पर उन्होंने मांसाहार का निषेध किया। एक बार जब कुशोक बकुला लद्दाख में किसी ग्राम की यात्र पर थे, तब उन्हें जानकारी मिली कि उनके स्वागत में एक भेड़ का वधा किया गया है । यह जानकर उनको काफी दुःख हुआ और उन्होंने शाकाहारी होने का फैसला किया, जिसका पालन उन्होंने लम्बे अरसे तक किया ।

जम्मू कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण - 15 अगस्त 1947 को अंग्रेज भारत को खंडित कर वापिस अपने देश चले गए । पूरे देश के लिए एक सांवैधानिक व्यवस्था की तैयारी होने लगी । अन्य रियासतों की तरह जम्मू कश्मीर ने भी देश में स्थापित हो रही नई संघीय सांवैधानिक व्यवस्था का हिस्सा बनने का निर्णय किया । पाकिस्तान जम्मू कश्मीर पर बलपूर्वक कब्जा करना चाहता था, इसलिए अक्टूबर 1947 में उसने राज्य पर आक्रमण कर दिया । इसे कबायली आक्रमण का नाम दिया गया । कश्मीर और जम्मू संभाग के अतिरिक्त वह लद्दाख पर भी कब्जा करना चाहता था । सामरिक लिहाज से लद्दाख अत्यन्त महत्वपूर्ण था । लद्दाख बौद्ध प्रधान क्षेत्र था । पाकिस्तान के कब्जे में चले जाने के बाद बौद्धों की वहाँ क्या हालत हो सकती है, इसका सहज अनुमान किया जा सकता है । गिलगित-बल्तिस्तान के पतन के बाद लद्दाख असुरक्षित हो गया था और कबायली आक्रमणकारियों के निशाने पर आ गया था । अगस्त 1948 तक आते-आते पाकिस्तानी सेना ने जोजीला दर्रे पर कब्जा कर लेने के बाद करगिल पर अधिकार जमा लिया था । जोजीला और करगिल पर कब्जे का अर्थ था कश्मीर घाटी का लद्दाख से सम्बंध स्थल मार्ग से कट जाना । लद्दाख बुरी

तरह घिर रहा था । लद्दाख बौद्ध बहुल इलाका था और यहाँ के लोग हिंसा और मारकाट से दूर रहने वाले शान्तिप्रिय लोग हैं । लद्दाखी लोग परिश्रमी और जाने-माने पर्वतारोही हैं । लेकिन इस क्षेत्र में सड़कों और पगडंडियों की संख्या लगभग नगण्य हैं । इसलिए यह दुर्गम क्षेत्रों में शुमार है । जोजीला और करगिल शत्रु के हाथ में चले जाने से लेह तक पहुँचने का जमीनी रास्ता भी बन्द हो गया था । वैसे भी नबम्वर में लद्दाख में हिमपात होता है । लड़ने वाले सैनिक ऐसे क्षेत्रों के थे जिन्होंने हिमपात जिन्दगी में पहली बार जम्मू कश्मीर में ही देखा था ।

ऐसी भीषण परिस्थितियों में भारतीय सेना और जम्मू कश्मीर स्टेट फोर्सेज के जवान लद्दाख में लोहा ले रहे थे । ऐसी परिस्थितियों में सेना को सबसे ज्यादा सहायता वहाँ की जनता से ही मिल सकती है । राज्य का सिविल प्रशासन शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की नेशनल कान्फ्रेंस के हाथों में था । लद्दाख में आम भावना थी कि संकट की इस घड़ी में राज्य सरकार के सिविल प्रशासन ने उन्हें भगवान भरोसे छोड़ दिया था । लद्दाख की जनता स्वयं को असहाय महसूस कर रही थी । वह मार्गदर्शन के लिए कुशोक बकुला की ओर देख रही थी । अब यह लड़ाई सेना और जनता को मिल कर ही लड़नी थी । इस समय कुशोक बकुला ने आम लोगों को सेना के साथ मिल कर दुश्मन से लोहा लेने के लिए तैयार करने में प्रमुख भूमिका अदा की । भारतीय सेना को इस मुकाबले में स्थानीय युवकों की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता थी । कुशोक बकुला इस अवसर पर आगे आए । उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर युवकों का संगठन तैयार किया, जो नुबरा गार्ड के नाम से प्रसिद्ध हुआ । उन्होंने युवकों से आह्वान किया कि वे मठों से बाहर आकर देश की रक्षा के लिए कमर कसें। नुबरा गार्ड भारतीय सेना के लिए अत्यन्त सहायक सिद्ध हुए । स्थानीय होने के कारण वे वहाँ के भूगोल से परिचित थे । उन्हें पर्वतीय क्षेत्रों में डटे रहने का अभ्यास तो था ही। इसी नुबरा गार्ड ने पाकिस्तानी सेना की तोपें नष्ट करने में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाई । नुबरा गार्ड ने शत्रु सेना को नुबरा घाटी में आगे बढ़ने से रोके रखा । लेकिन इस पूरे अभियान काल में लद्दाखियों का और कश्मीरियों का आपस में अविश्वास बहुत बढ़ गया ।

लडाई के दिनों में भारतीय सेना के जनरल करिअप्पा लद्दाख आए। वे संकट काल में कुशोक बकुला की सहायता और उनकी दूरगामी दृष्टि से बहुत प्रभावित थे । उन्होंने बकुला को दिल्ली में प्रधानमंत्री नेहरु से मिलने के लिए कहा । वे 20 मई 1949 को दिल्ली जाकर पंडित नेहरु को मिले । बकुला रिम्पोछे ने नेहरु को जम्मू कश्मीर में केवल कश्मीर केन्द्रित प्रशासन की शिकायत कि और यह भी पूछा कि कश्मीर सरकार लद्दाख पर किस अधिकार से राज कर रही है ? उन्होंने लद्दाख के भारत माता का अंग बन जाने पर प्रसन्नता प्रकट की । शेख अब्दुल्ला की सरकार की कार्य प्रणाली से बकुला खुश नहीं थे । लद्दाख में आगे बढ़ती पाकिस्तानी सेना को तो भारतीय सेना ने रोक लिया था लेकिन नेहरु जी के अत्यन्त विश्वासपात्र शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की तेजी से बढ़ती हुई महत्वकांक्षाओं को रोकना अब शायद नेहरु के लिए भी मुश्किल होता जा रहा था । लद्दाखी मान रहे थे कि इस पूरे संकट काल में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के सिविल प्रशासन ने लद्दाख की ओर कोई ध्यान नहीं दिया और उन्हें भाग्य भरोसे छोड़ दिया । इतना ही नहीं युद्ध विराम हो जाने के बाद, सिविल प्रशासन घायल लद्दाख की महरम पटी करने के स्थान पर उससे उपेक्षा का व्यवहार कर रहा था । लद्दाख में यह भी आवाज उठने लगी थी कि उसे कश्मीर घाटी के साथ जोड़े रखने की बजाए पूर्वी पंजाब से जोड़ दिया जाए जो लाहुल स्पिति के रास्ते लद्दाख से जुड़ा हुआ था । (लाहुल स्पिति उन दिनों पंजाब का हिस्सा था, उसे बाद में हिमाचल प्रदेश में शामिल किया गया ।)

कुशोक बकुला, शेख अब्दुल्ला के लद्दाख के प्रति अवहेलनापूर्ण व्यवहार से आहत थे । इसका आभास शायद नेहरु को भी किसी न किसी रूप में होने ही लगा था । दिल्ली में, लद्दाख और कश्मीर घाटी में बढ़ते

वैमनस्य और अविश्वास से चिन्ता बढ़ रही थी । अत: पंडित जवाहर लाल नेहरु ने कुशोक बकुला और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को आपस में मिल लेने का परामर्श दिया । 29 मई 1949 को बकुला रिम्पोछे भारतीय वायु सेना के विशेष विमान द्वारा श्रीनगर पहुँचे । अगले दिन 30 मई को वे शेख मोहम्मद अब्दुल्ला से मिले । शेख अब्दुल्ला ने, ''लद्दाख में सिविल प्रशासन को मजबूत करने और आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति सुनिश्चित करने का आश्वासन दिया । शेख ने लद्दाख में अपनी पार्टी नेशनल कान्फ्रेंस की शाखा खोलने का प्रस्ताव भी रखा । कुछ सप्ताह बाद ही पंडित जवाहरलाल नेहरु लेह आने वाले थे । कुशोक बकुला ने शेख को उस समय लेह आने का निमंत्रण दिया ।'' (नवांग छेरिंग शकपो, कुशोक बकुला रिम्पोछे– सेंट एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 31)

चतुर्थ अध्याय

राजनीति में भूमिका

नेहरु से मुलाकात और राजनीति में प्रवेश

4 जुलाई 1949 को पंडित जवाहरलाल नेहरु लेह पधाारे । उनके साथ राज्य के प्रशासक शेख अब्दुल्ला भी थे । उनका स्वागत करने के लिए हवाई पट्टी पर युवा कुशोक बकुला भी मौजूद थे । नेहरु जी ने बकुला को प्रदेश की राजनीति में सक्रिय हिस्सा लेने के लिए सुझाव दिया। लद्दाख क्षेत्र से यदि कोई प्रभावी व्यक्तित्व जम्मू कश्मीर की राजनीति में उभर सकता है तो आगे जाकर कहीं न कहीं प्रदेश में संतुलन बनाने में सहायता मिल ही सकती थी । कुशोक बकुला चाहे आध्यात्मिक क्षेत्र के व्यक्ति थे लेकिन राष्ट्रहित में उन्होंने नेहरु का यह सुझाव स्वीकार कर लिया और नेशनल कान्फ्रेंस की लद्दाख शाखा का अध्यक्ष बनना स्वीकार कर लिया । इससे जम्मू कश्मीर की राजनीति में एक नए अध्याय का सूत्रपात हुआ । यह भी संयोग ही कहा जाएगा कि जम्मू कश्मीर के ही एक अन्य नेता शेख मोहम्मद अब्दुल्ला से भी नेहरु की मुलाकात लाहौर में 1936 में हुई थी और नेहरु ने ही रियासत की राजनीति में उन्हें आगे बढ़ाया था । 1949 तक आते-आते शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने कश्मीर घाटी में भारत और नेहरु दोनों के लिए ही समस्याएँ उलझानी शुरु कर दी थीं । यह संयोग ही कहा जाएगा कि उन समस्याओं का कुछ सीमा तक ही सही, हल तलाशने के लिए नेहरु ने कुशोक बकुला को सक्रिय राजनीति में आने के लिए प्रेरित किया । बकुला लद्दाख में राज्य चला रही नेशनल कान्फ्रेंस के अधयक्ष हो चुके थे लेकिन शेख की उपस्थिति में ही उन्होंने नेहरु को लद्दाखियों की समस्याओं और उनके समाधान के बारे में माँग पत्र देने से गुरेज नहीं किया ।

वैसे भी कुशोक बकुला 1947 में ही लद्दाख में नुबरा गार्ड का गठन करके अपनी रुचि व स्वभाव का परिचय दे चुके थे ।

राजनीति में रुचि लेने का अवसर वैसे भी कुशोक बकुला के आगे उपस्थित हो चुका था । शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने जम्मू कश्मीर में अंतरिम सत्ता संभालते ही भू-सुधार के नाम पर जो आन्दोलन चलाया उसमें प्रदेश भर में भूमि की सीमा 22 एकड़ निश्चित कर दी गई । कोई भी व्यक्ति/संस्था अपने पास उससे ज्यादा भूमि नहीं रख सकती थी । जिनके पास निश्चित भू-सीमा से ज्यादा भूमि थी, सरकार उस पर अपना कब्जा कर रही थी । निजी सम्पत्ति अधिग्रहण करने पर मुआवजा भी नहीं दिया जा रहा था । दिल्ली में पंडित नेहरु इस मामले पर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का डट कर समर्थन कर रहे थे । अब्दुल्ला की यह नीति जम्मू और कश्मीर में किसको लाभ दे रही थी और किसके मौलिक अधिकारों का हनन कर रही थी, इस पर तो राज्य में बहस हो ही रही थी लेकिन लद्दाख में यह नीति गजब ढ़ा रही थी। उसकी ओर ध्यान देने का समय किसी के पास नहीं था ।

लद्दाख के मठों-विहारों-गोम्पाओं की जमीन पर सरकारी कब्जा हो रहा था । लद्दाख की भूमि, जम्मू संभाग व कश्मीर संभाग की भूमि की तरह उपजाऊ भी नहीं थी । यदि गोम्पाओं की 22 एकड़ से ज्यादा भूमि पर सरकार कब्जा कर ले तो जाहिर है लद्दाख के बौद्ध मठों की सारी अर्थ व्यवस्था नष्ट हो जाती और वहाँ बौद्ध समाज का सारा आधार ही अस्त-व्यस्त हो जाता है । कुशोक बकुला से ज्यादा अच्छी तरह इसको कौन समझ सकता था । उन्होंने 1949 में ही लद्दाख के सभी मठों के प्रतिनिधियों को एकत्रित किया और अखिल लद्दाख गोम्पा समिति का गठन किया । गोम्पाओं के प्रतिनिधियों ने उन्हें सर्वसम्मति से इस समिति का अध्यक्ष चुना। उन्होंने सभी को शेख मोहम्मद अब्दुल्ला की इस नीति से भविष्य में होने वाले नुकसानों से आगाह किया ।

कुशोक बकुला के नेतृत्व में मठों का एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली में जाकर पंडित नेहरु और भीमराव आम्बेडकर से मिला । कुशोक बकुला के प्रयासों से लद्दाख में बौद्ध मठों को इस नियम से मुक्त किया गया और बौद्ध मठों की जमीन सरकारी कब्जे में जाने से बची । इससे लद्दाख के लोगों में भी यह विश्वास जगा कि यदि वे संगठित हों तो अन्याय का सफलतापूर्वक विरोध कर सकते हैं । इस गोम्पा समिति ने पहला मोर्चा जीत लिया था । चालीस वर्षों तक कुशोक बकुला इस गोम्पा समिति के अध्यक्ष रहे ।

सारनाथ में मूलगन्धकुटी नाम से एक बौद्ध विहार है । इस विहार में भगवान बुद्ध और उनके दो शिष्यों सारिपुत्र और मौदगल्यायन के अस्थि अवशेष सुरक्षित रखे गए हैं । कुशोक बकुला की इच्छा थी कि इन अवशेषों को यदि लद्दाख में श्रद्धालुओं द्वारा दर्शन हेतु रखा जाए तो सारा लद्दाख एक-जुट हो जाएगा । अपनी यह इच्छा उन्होंने पंडित जवाहर लाल नेहरु को तब बताई थी जब वे जुलाई 1949 में लेह आए थे । पंडित जी ने उन्हें आश्वासन दिया था कि वे इस सम्भावना पर विचार करेंगे । उनके प्रयासों से 26 मई 1950 को पवित्र अस्थि-अवशेष को महाबोधि सभा के संरक्षण में लेह लाया गया। इस प्रकार की पवित्र एवं दुर्लभ स्मृति को लद्दाख में इससे पूर्व नहीं लाया गया था। इसे लेह में ढाई महीने तक रखा गया, जहां दूर-दूर से श्रद्धालुजन आकर दर्शन करते थे। बाद में इन्हें लद्दाख के बड़े गोम्पाओं में भी ले जाया गया जिससे अधिक से अधिक संख्या में श्रद्धालु दर्शन कर सके। भगवान बौद्ध के अस्थि अवशेषों ने पूरे लद्दाख में मानों जन-ज्वार ला दिया हो । सारा लद्दाख एक ही भाव से अभिपूरित था । साधारण लद्दाखी अपने जीवन में इन अवशेषों को सारनाथ जाकर देखने की कल्पना तक नहीं कर सकता था । अब मानों साक्षात भगवान बुद्ध स्वयं चल कर उनके द्वार पर पहुँच गए हों ।

कुशोक बकुला जम्मू कश्मीर विधान सभा में – उधर राज्य में स्थिति पल–पल में बदल रही थी । पाकिस्तान ने अभी जम्मू कश्मीर का पूरा हिस्सा खाली नहीं किया था । नेहरु भी उसे खाली करवाने का रास्ता त्याग कर सुरक्षा परिषद की भूल–भुलैयों में फँस चुके थे । इसी हालत में 1951 के उत्तरार्ध में जम्मू कश्मीर संविधान सभा के लिए चुनावों की घोषणा हो गई । लद्दाख के लोगों ने संविधान सभा में जाने के लिए कुशोक बकुला से आग्रह किया । कुशोक बकुला जैसे लोग सभा में होंगे तो देश के राष्ट्रीय हितों के पहरेदार बन सकते थे । वे राज्य की इस संविधान सभा के लिए लेह से निर्विरोध चुने गए । संविधान सभा के चुनावों तक तो शेख मोहम्मद अब्दुल्ला भारत की कसमें खाते थे लेकिन संविधान सभा में नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्य भर देने के बाद उनका रवैया बदला । वे जम्मू कश्मीर की स्वायत्तता के नाम पर व्यावहारिक रूप में स्वतंत्र राज्य का सपना देखने लगे । संविधान सभा में अन्य किसी भी दल का कोई सदस्य नहीं था । प्रदेश के दूसरे सबसे बड़े राजनैतिक दल प्रजा परिषद के अधिकांश प्रत्याशियों के नामांकन पत्र ही रद्द कर दिए जाने के कारण उसने चुनावों का बहिष्कार कर दिया था । ऐसे अवसर पर कुशोक बकुला ने व्यापक राष्ट्रहित में मोर्चा संभाला । वैसे भी लद्दाख अब तक राज्य का उपेक्षित हिस्सा रहा था, नई व्यवस्था में भी कहीं पुरानी मानसिकता से काम न होता रहे, इसको लेकर कुशोक बकुला चौकन्ने थे । लद्दाख बौद्ध परिषद पहले ही नेहरु को ज्ञापन दे चुकी थी कि या तो यह संभाग सीधे महाराजा हरि सिंह के प्रशासन का हिस्सा रहे या फिर लद्दाख को जम्मू या पूर्वी पंजाब से मिला दिया जाए । नवनिर्वाचित संविधान सभा का पहला सत्र 31 अक्टूबर 1951 को शुरु हुआ । दूसरे दिन प्रथम नवम्बर को बोलते हुए कशुक बकुला ने आशा व्यक्त की कि यह सदन उन समस्याओं का समाधान खोजेगा जिनको आज तक हल नहीं किया जा सका । लद्दाख का अब तक उपेक्षित रहा क्षेत्र भी विकास के मार्ग पर चलेगा । लेकिन साथ ही

उन्होंने स्पष्ट संकेत भी दिया कि लद्दाख की समस्याएँ जम्मू एवं कश्मीर संभाग से अलग हैं । लद्दाख की भाषा और संस्कृति अन्य संभागों से हट कर है । इसलिए मुझे आशा है कि यह सभा ऐसा संविधान तैयार करेगी जो लद्दाखियों को अपना आतंरिक प्रशासन स्वयं चलाने का अधिकार प्रदान करेगा । कुशोक बकुला का यह स्पष्ट संकेत था कि यदि कश्मीर के कुछ लोगों ने स्वायत्तता की बातें करनी शुरु कर दी हैं तो कश्मीरियों से स्वायत्तता प्राप्त करने का यह अधिकार लद्दाखियों को भी मिलना चाहिए । बकुला अपनी मातृभाषा भोटी में बोले । जम्मू कश्मीर की विधान सभा (पूर्व में इसका नाम प्रजा सभा था) में भोटी में बोलने की शुरुआत कुशोक बकुला ने ही की थी । ''उन्होंने स्पष्ट किया कि लद्दाख और कारगिल के लोग भारत के साथ सुखद और मजबूत सम्बंध बढ़ाना चाहते हैं ।'' जम्मू कश्मीर संविधान/विधान सभा के सदस्य के रूप में लद्दाख के लोगों के अधिकारों, उसके विकास और भारत के साथ समरसता पर उन्होंने सबका ध्यान आकर्षित किया । लेकिन वास्तव में लद्दाख की ओर शेख अब्दुल्ला सरकार का कोई ध्यान नहीं था । उसका भी विकास होना चाहिए, ऐसा उस समय की सरकार मानने को तैयार ही नहीं थे । शेख अब्दुल्ला ने नेहरु की सहायता से महाराजा हरि सिंह से सत्ता एक प्रकार से छीनी ही थी । इसलिए उन दिनों शेख अब्दुल्ला को आईना दिखाने की स्थिति में कोई नहीं था । वह एक निरंकुश शासक की तरह व्यवहार कर रहे थे । नेहरु भी उसके आगे कहीं न कहीं अपने आप को विवश समझने लगे थे । उसका कारण साफ था । राज्य की संविधान सभा में शेख का पूरा अधिकार था । नेहरु भी अपनी विवशता छिपाने के लिए शेख की माँगों को औचित्य के आधार पर सही सिद्ध करने का प्रयास करते नजर आते थे । ऐसे समय में कुशोक बकुला ने शेख अब्दुल्ला से पंजा लड़ाने का निर्णय किया । वे शेख के अहंकार, लद्दाख को लेकर सरकार की उपेक्षा को चुनौती देने का निर्णय कर बैठे थे ।

12 अप्रेल 1952 को वित्त मंत्री ने संविधान सभा में बजट प्रस्तुत किया । पूरे बजट में कहीं एक बार भी लद्दाख का नाम नहीं था । बकुला, सरकार द्वारा लद्दाख की अवहेलना किए जाने से बहुत व्यथित थे । शेख अब्दुल्ला द्वारा सत्ता संभाल लेने के बाद तो मानो कश्मीर वालों के लिए लद्दाख का अस्तित्व ही न रहा हो । इसलिए बकुला ने विधान सभा में इस विषय को जोरदार तरीके से उठाने का निर्णय किया । लेकिन वे यह भी जानते थे कि शेख अब्दुल्ला को चुनौती देने का क्या अर्थ है । उन दिनों शेख अब्दुल्ला अपनी ताकत की चरम सीमा पर थे । वे चारों ओर से नेहरु द्वारा संरक्षित प्राणी की श्रेणी के जीव थे । नेहरु लोकसभा में उसके खिलाफ एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं होते थे । ऐसे वातावरण में शेख अब्दुल्ला को चुनौती देना सत्ता के दो-दो केन्द्रों से भिड़ना था । लेकिन बकुला भी तो उस महात्मा बुद्ध के उपासक थे जिन्होंने जन-जन के दुख-दर्द को दूर करने के लिए अपने राजपाट को भी लात मार दी थी । अब जब लद्दाख के जन-जन ने उन्हें अपना प्रतिनिधि चुना है, उन पर अपना अबाध विश्वास जताया है तो उनको भी विकास का सुफल मिले यह देखना बकुला का ही तो धर्म है । शेख अब्दुल्ला ने तो लद्दाख के लोगों को गूँगे-बहरे निरीह प्राणी मान लिया था, जो किसी प्रकार का अन्याय होने पर भी चुप बैठे रहेंगे । शेख का बजट इसका पुख्ता सबूत था ।

कुशोक बकुला ने लेह में कार्य कर रहे अपने एक मित्र श्रीधर कौल से सलाह की । विधान सभा में बोलने के लिए भाषण तैयार किया गया । लद्दाख को लेकर सरकार के सौतेले व्यवहार को परत-दर-परत उघाड़ा गया । बकुला जब किसी काम को हाथ में लेते थे तो पूरे मनोयोग से करते थे । उन्होंने तिब्बत के गांदेन विश्वविद्यालय से गेशे की उपाधि प्राप्त की थी । गेशे के लिए सर्वाधिक अभ्यास तत्व मीमांसा के लिए तर्क पर ही होता है । इसलिए बकुला ने अपना भाषण केवल भावनाओं पर केन्द्रित नहीं किया बल्कि तर्कसम्मत विवेचना पर आधारित किया । बकुला लद्दाखियों

की मातृभाषा भोटी में बोलने वाले थे । वर्तमान रियासत का दो तिहाई क्षेत्रफल लद्दाख का ही है । क्षेत्रफल के हिसाब से तो लद्दाख रियासत के पाँचों संभागों में से सबसे बड़ा संभाग है । इस संभाग में दो भाषाएँ बोली जाती हैं । लेह के इलाके में भोटी और कारगिल के इलाके में बल्ती । लेकिन उनको आशंका थी कि शायद राज्य की संविधान सभा में उन्हें भोटी में बोलने की अनुमति न दी जाए । क्योंकि सभा में तो शेष सभी सदस्य कश्मीर घाटी और जम्मू संभाग के रहने वाले थे । वे भोटी का एक शब्द तक नहीं जानते थे । गिलगित और बल्तिस्तान के लोग कुछ सीमा तक भोटी समझ लेते थे लेकिन उन क्षेत्रें में चुनाव न हो पाने की बजह से वहाँ का कोई प्रतिनिधि सभा में नहीं था । इसलिए कुशोक बकुला ने अपने भाषण का अंग्रेजी अनुवाद भी तैयार करवाया । अन्ततः 12 मई को वह क्षण आ गया । बकुला बजट भाषण पर बोलने के लिए खड़े हुए । अधिकांश सदस्य उर्दू या अंग्रेजी में भाषण कर चुके थे । कुशोक बकुला ने सभा के अध्यक्ष से कहा कि वे अपनी मातृभाषा भोटी में बोलेंगे । गुलाम मोहम्मद सादिक, जो बाद में जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री भी बने, उस समय संविधान सभा के अध्यक्ष थे । उन्होंने अनुमति तो दे दी लेकिन पूरी सभा में भोटी समझने वाला कोई नहीं था । इसलिए यह निर्णय हुआ कि कुशोक बकुला अपने भाषण की अंग्रेजी प्रति सभा के पास जमा करवा दें । बकुला तो पहले ही अपने भाषण के अंग्रेजी अनुवाद की प्रति लेकर आए थे । जैसे ही बकुला का भाषण समाप्त हो, संविधान सभा के सचिव उसका अंग्रेजी अनुवाद पढ़ कर सुनाएंगे ताकि सभी को पता चल जाए कि उन्होंने क्या कहा है । फिर इस अंग्रेजी भाषण को ही संविधान सभा की कार्यवाही में रिकार्ड किया जाए ।

इस व्यवस्था पर सहमति बन जाने के बाद कशुक बकुला ने बोलना शुरु किया । शेख मोहम्मद अब्दुल्ला भी उस समय सदन में बैठे थे। वे सरकार चला रही नेशनल कान्फ्रेंस के मुखिया भी थे । अब्दुल्ला की

पार्टी के लोग उन्हें अपने सम्बोधन में प्राय कायदे आजम कहा करते थे । उस समय मुसलमानों में जिन्ना को कायदे आजम कहने का प्रचलन था । शेख अब्दुल्ला भी अपने–आप को कायदे आजम से कम नहीं समझते थे। दरअसल दोनों में भारत के मुसलमानों का नेतृत्व हथियाने का विवाद चलता रहता था । जिन्ना इसमें बाजी मार ले गए थे और शेख अब्दुल्ला केवल कश्मीर घाटी तक सीमित होकर रह गए थे । इसकी कमी वे अपनी पार्टी के लोगों से स्वयं को कायदे आजम कहलवा कर पूरा करते थे ।

अब संविधान सभा के सरकारी रिकार्ड में तो कुशोक बकुला भी नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्य के तौर पर ही दर्ज थे । सभी सदस्य आम तौर पर विरुदावली ही गाते थे । जम्मू संभाग के कुछ सदस्य बीच–बीच में कुछ लीक से हट कर बोलते थे लेकिन बोलने की शैली इस प्रकार की होती थी कि वे लीक से हटे हुए भी लीक पर चलते ही दिखाई दें । वैसे भी नेहरु जी के कारण शेख अब्दुल्ला की तूती बोलती थी । आम कश्मीरी समझ गया था कि भारत सरकार कश्मीरियों के साथ है या नहीं, इस पर कुछ कहना तो मुश्किल था लेकिन वह शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के साथ थी, इसे सभी जान गए थे । इसलिए वे देखते–देखते शेर–ए–कश्मीर से कायदे आजम बन गए थे । इस प्रकार के वातावरण में उस लद्दाख का प्रतिनिधि, जिसके कुल सदस्यों की संख्या ही सभा में दो थी, भला प्रशंसा और समर्थन के सिवा क्या बोलेगा, नेशनल कान्फ्रेंस के सभी सदस्य यही सोच रहे थे । उधार जम्मू में वहाँ के प्रमुख राजनैतिक दल प्रजा परिषद ने जम्मू संभाग से हो रहे भेदभाव को लेकर नेशनल कान्फ्रेंस की सरकार के खिलाफ जबरदस्त जन आन्दोलन छेड़ा हुआ था । इसलिए ऐसे कठिन समय में शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को लद्दाख संभाग के समर्थन की बहुत सख्त जरुरत भी थी ।

कुशोक बकुला अपने स्थान पर खड़े हुए । उन्होंने उड़ती नजर से वहाँ बैठे सभी सदस्यों की ओर देखा । अन्त में उनकी नजर शेख मोहम्मद अब्दुल्ला पर जाकर ठहर गई। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और बकुला

ने बोलना शुरु किया । शेख मोहम्मद अब्दुल्ला मुस्कुराने लगे । बकुला ने बीच में शेख अब्दुल्ला का नाम लिया । पूरा वाक्य तो किसी को क्या समझ में आता लेकिन शेख अब्दुल्ला का नाम तो नेशनल कान्फ्रेंस के लोग कितना भी धीमा क्यों न लिया गया हो, सुन ही लेते थे । सत्ता पक्ष के सदस्यों ने शेख का नाम सुनने पर जम कर मेजें थपथपाई । अब तो जब भी शेर-ए-कश्मीर शेख अब्दुल्ला का नाम बकुला के भाषण में आता तो सत्ता पक्ष के सदस्य मेजें थपथपा कर उसका स्वागत करते । यह मंजर तब तक चलता रहा जब तक कुशोक बकुला भाषण करते रहे । समझ बकुला भी गए थे कि ये लोग मेज थपथपा कर किस लिए अपनी खुशी का इजहार कर रहे हैं । उनकी समझ में अब लद्दाख भी शेख अब्दुल्ला और नेशनल कान्फ्रेंस के समर्थन में आ खड़ा हुआ है। फिर कुशोक बकुला कोई साधारण पुरुष नहीं थे । वे टुलकु थे । हिमालयी क्षेत्र में टुलकु उसे कहते हैं जो किसी का अवतार हो । टुलकु बोधिसत्व होता है । बकुला, भगवान बुद्ध के सोलह अर्हतों में से एक थे । वह बुद्ध के समकालीन थे । लद्दाख के वर्तमान कुशोक बकुला को उन्हीं अर्हत बकुला का उन्नीसवाँ अवतार माना जाता है । वही कुशोक बकुला आज जम्मू कश्मीर की संविधान सभा में बजट पर व्याख्यान दे रहे थे और अब्दुल्ला कम्पनी तालियाँ बजा रही थी । लेकिन ये तालियाँ कुछ समय के लिये ही थीं और शेख साहिब का मुस्कुराता चेहरा भी कुछ समय के लिए ही था ।

कुशोक बकुला के वक्तव्य के बाद, विधान सभा के सचिव ने अंग्रेजी अनुवाद का पाठ शुरु किया तो धीरे-धीरे सभी के चेहरे का रंग बदलना शुरु हो गया । कुशोक बकुला आश्चर्य प्रकट कर रहे थे कि वित्त मंत्री ने अपने लम्बे भाषण में लद्दाख की आर्थिक व अन्य समस्याओं को हल करने की बात तो दूर, उन्होंने तो अपने पूरे भाषण में एक बार भी लद्दाख का नाम नहीं लिया । लद्दाख के अभागी लोगों के लिए यह बजट सचमुच निराशाजनक है । वित्त मंत्री के इस भाषण को सुन कर तो कोई भी

यह अनुमान लगा लेगा कि शायद लद्दाख, जम्मू कश्मीर राज्य का हिस्सा ही नहीं है। पूरे बजट में सभी योजनाएँ अन्य संभागों के लिए ही बनाई गई हैं लद्दाख के लिए किसी एक भी योजना का जिक्र नहीं है। जैसे–जैसे अंग्रेजी में भाषण पढ़ा जा रहा था, वैसे–वैसे नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्यों के चेहरे पर हवाईयां उड़ रही थीं। शेख अब्दुल्ला को तो यह विश्वास ही नहीं हो रहा था कि लद्दाख का सदस्य, जो कायदे से नेशनल कान्फ्रेंस का ही सदस्य है, इतनी हिम्मत दिखाए कि कायदे आजम के सामने ही उसकी आलोचना करे। कायदे आजम का नाम तो अंग्रेजी भाषण में भी बार–बार आ रहा था लेकिन अब कोई उस पर तालियाँ नहीं बजा रहा था। उधर आलोचना का स्वर तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा था। बकुला ने कहा, लद्दाख में शिक्षा को लेकर सरकार मौन है। पूर्ववर्ती सरकार (महाराजा हरि सिंह की सरकार) इस सीमान्त जिला के प्राथमिक, सैकेण्डरी और कालिज दर्जे के छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान करती थी लेकिन इस नई सरकार ने तो एक ही झटके से उसे भी समाप्त कर दिया। महाराजा हरि सिंह की सरकार लद्दाख में शिया, सुन्नी और बौद्ध समाज द्वारा चलाए जा रहे तीन विद्यालयों को अनुदान देती थी, वर्तमान सरकार ने उसे भी बन्द कर दिया। लद्दाख में जो थोड़ी बहुत स्कूली व्यवस्था थी भी उसकी दयनीय स्थिति की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा सरकार नाम लेने के लिए तो लद्दाख के स्कूलों में भोटी भाषा के अध्ययन की व्यवस्था करती है लेकिन वह छात्रों के लिए भोटी भाषा में किताबें नहीं छापती। बिना किताब के पढ़ाई कैसी ? सरकार ने बजट में भोटी के विकास के लिए कोई प्रावधान नहीं किया। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि सरकार ने लद्दाख के स्कूलों में पढ़ाई का माध्यम अनिवार्य रूप से उर्दू बना दिया है। लद्दाखी बच्चों के लिए तो उर्दू एक विदेशी भाषा से ज्यादा कुछ नहीं। दरअसल सरकार उर्दू को लाद कर लद्दाख में पढ़ाई–लिखाई को खत्म करने पर तुल गई है। बकुला ने भाषा को लेकर यह मौलिक प्रश्न उठाया था। सरकार लद्दाख के लोगों की मातृभाषा

भोटी को शिक्षा व्यवस्था में से समाप्त करने के एक गहरे षडयंत्र में जुटी हुई थी। लेकिन मामला केवल भोटी का ही नहीं था । शेख अब्दुल्ला की सरकार तो अपनी मातृभाषा कश्मीरी को भी समाप्त करने के गहरे षडयन्त्र में लगी हुई थी । कश्मीर घाटी के स्कूलों में भी शिक्षा का माध्यम कश्मीरी के स्थान पर उर्दू किया गया था । भाषा का समाप्त होना यानि पीढ़ियों की विरासत का जीवन्त रूप में समाप्त हो जाना । कहीं शेख अब्दुल्ला कश्मीरियत को समाप्त करने की नींव तो तैयार नहीं कर रहे थे ? इसका उत्तर तो वे स्वयं ही जानते होंगे लेकिन इतना निश्चित था भोटी भाषा उनके आक्रमण का शिकार हो रही थी। जो अपनी भाषा को ही कश्मीर घाटी से समाप्त करने के अभियान चला रहा हो उसके लिए भोटी की क्या बिसात थी । बकुला ने कहा कि जम्मू और कश्मीर संभाग में तकनीकी शिक्षा के प्रसार के लिए कितना कुछ किया जा रहा है लेकिन लद्दाख में तकनीकी शिक्षा का अस्तित्व ही नहीं है । तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था नहीं होगी तो लद्दाख की युवा पीढ़ी को रोजगार के अवसर कैसे प्राप्त होंगे ?

अब बकुला ने लद्दाख में शरणार्थियों की समस्या का प्रश्न उठाया। उन्होंने कहा कि 1948 में जम्मू कश्मीर पर पाकिस्तानी हमले के कारण जंस्कार घाटी से निकल कर शरणार्थी बनने के लिए विवश हो गए लोगों के पुनर्वास के लिए बजट में कोई प्रावधान नहीं है । ये बदकिस्मत शरणार्थी अभी भी कुल्लु घाटी में मारे-मारे फिर रहे हैं । इनमें से कई तो मृत्यु का शिकार भी हो गए हैं । लेकिन सरकार को इनके पुनर्वास की तनिक भी चिन्ता नहीं है । इस हमले के कारण अनेक मठों को हमलावरों ने नष्ट कर दिया था । नष्ट हुए मठों की मरम्मत करवाने की ओर सरकार का ध्यान जाने का तो खैर प्रश्न ही नहीं है । बकुला के इस वक्तव्य के पीछे छिपे व्यंग्य को शेख अब्दुल्ला से बेहतर भला कौन समझ सकता था ? लद्दाख के आर्थिक विकास का सरकार को ख्याल आए, यह आशा करना तो आकाश कुसुम के समान ही होगा । दुख का विषय तो यह है कि हमें यकीन

दिलवाया गया था कि इस क्षेत्र का भी विकास होगा । यह बात हमें स्वयं जवाहरलाल नेहरु ने कही थी । लेकिन यह सब झूठा सिद्ध हुआ ।

पंचायती राज, सहकारिता और ग्रामीण विकास, ये सभी योजनाएं लद्दाख में भी लागू की जानी चाहिए । लेकिन बजट में इसका कहीं जिक्र तक नहीं है । बल्कि इसके विपरीत विकास के जो काम पुरानी सरकार के समय में चालू थे, उन्हें भी नई सरकार ने बन्द करवा दिया । जम्मू और कश्मीर में नई नहरें खुदवाने के लिए पच्चीस लाख का प्रावधान बजट में किया गया है । इन इलाकों में नहरें पहले ही हैं । लेकिन लद्दाख के सूखे रेगिस्तान के लिए किसी एक छोटी से छोटी नहर के लिए भी बजट में फूटी कौडी नहीं है । कारगिल में खुरबाथांग नहर का सर्वेक्षण करवाया था लेकिन वर्तमान सरकार उससे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ पाई ।

कुशोक बकुला ने लद्दाख की भोगौलिक स्थिति की चर्चा की । उन्होंने कहा क्षेत्र की सबसे बड़ी समस्या परिवहन और संचार को लेकर है । दुर्गम पहाड़ी इलाका है । न सडकें हैं और न ही पगडंडियाँ । बस्तियाँ दूर-दूर हैं । इसलिए इलाके के विकास के लिए लद्दाख की दूर-दराज की बस्तियों को जोड़ने के लिए कच्ची-पक्की सड़कों के निर्माण की जरुरत है। लेकिन बजट में इसके प्रावधान की बात तो दूर, इसका कहीं संकेत भी नहीं किया गया है । हम तो भारतीय सेना के आभारी हैं कि उन्होंने कारगिल तक जाने के लिए कम से कम जीप चलने लायक पक्की सड़क तो बनाई है । पूरे लद्दाख में डाक-तार विभाग के केवल दो कार्यालय हैं । लेह और करगिल में । जंस्कार घाटी के लोगों को डाक या तार की जरुरतों के लिए करगिल जाना पड़ता है । जंस्कार से करगिल की दूरी 150 मील है और रास्ते में 4400 मीटर की ऊँचाई वाली दो पर्वत चोटियाँ आती हैं । जरुरत थी कि सरकार लद्दाख में संचार व्यवस्था स्थापित करने की कोई योजना बनाती लेकिन वित्त मंत्री के पूरे बजट में लद्दाख का तो मानो अस्तित्व ही नहीं है ।

सरकार चाहे तो कह सकती है कि हम फिलहाल लद्दाख पर नौ लाख रुपया खर्च करते हैं । यह सच है लेकिन मैं स्पष्ट कर दूँ यह सारा पैसा सरकारी कर्मचारियों के वेतन पर खर्च हो जाता है, विकास के लिए एक पैसा नहीं बचता । हमें आशा थी कि लद्दाख के प्राकृतिक स्रोतों का दोहन करने के लिए विशेषज्ञों की समिति का गठन किया जाएगा और हमारी इस प्राकृतिक सम्पदा का आकलन कर विकास की योजनाएँ बनाई जाएँगी लेकिन बजट में इसका दूर- दूर तक जिक्र नहीं है । लगता है हमारे संभाग को यह सरकार विजित प्रदेश मान कर चल रही है । आज हम से जिस दर पर लगान वसूला जा रहा है, उतना तो शोषण की चरम स्थिति के दिनों में भी नहीं वसूला जाता था । इस समय कुशोक बकुला ने एक और स्पष्टीकरण दिया । उन्होंने कहा कि मैं जानता हूँ कि यहाँ कुछ मंत्री लोग कह रहे हैं कि जो मैं कह रहा हूँ, वह आम लद्दाखी नहीं कह रहे बल्कि उनको आगे करके कोई और बोल रहा है । बकुला ने कहा हमारा पेट भूखा है, यह बताने के लिए भी हमें कोई बाहर से ही आएगा ? बिना कपड़ों के हम शीत से मरे जा रहे हैं, यह हमें कोई बाहर से बताने आएगा ? फिर उन्होंने व्यंग्य से कहा, जब 1931 में शेख अब्दुल्ला ने महाराजा हरि सिंह के खिलाफ मोर्चा लगाया था तो सरकारी क्षेत्रों में यह चर्चा थी कि वे विदेशी ताकतों के इशारे पर यह सब कर रहे हैं । ताज्जुब है आज कुछ सरकारी मंत्री हमारे बारे में यह कह रहे हैं। बकुला ने शेख अब्दुल्ला के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार पर तंज कसा । उन्होंने कहा श्रीनगर से हमारे लिए लेह में कपड़ा भेजा जाता है लेकिन उसका एक टुकड़ा तक लद्दाखियों को नहीं मिल पाता । आखिर वह सारा कपड़ा कौन पहन रहा है ? मिट्टी का तेल हमारे लिए श्रीनगर से भेजा जाता है लेकिन उसकी एक बूँद भी हम तक नहीं पहुँचती । आखिर वह सारा तेल कहाँ चला जाता है ? इतिहास में पहली बार, उस सरकार द्वारा जो अपने आप को लोगों की अपनी सरकार कहती है, लद्दाख में बाहर से पुलिस बल तैनात कर दिए गए । हमने कभी सपने में भी ऐसी कल्पना नहीं

की थी । जमीन पर रेंगते निरीह कीड़े पर जब कोई पैर रख देता है तो वह भी प्रतिकार करता है, हम तो आखिर मनुष्य हैं । हम लद्दाखियों का धैर्य अब जबाब देने लगा है । हमारी परीक्षा मत लीजिए । मुझे आशा है सरकार मेरी बातों पर गौर करेगी और उनका समाधान करेगी ।

लेकिन इधर यह सब सुनते-सुनते शेख मोहम्मद अब्दुल्ला का धैर्य भी अब जबाब देने लगा था । वे गुस्से में उठ कर खड़े हो गए और अध्यक्ष को सम्बोधित कर अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यवस्था का प्रश्न उठाने लगे । उन्होंने कहा, यह अनुवाद सही नहीं है। भोटी का भाषण छोटा था तो अंग्रेजी का भाषण लम्बा कैसे हो सकता है । यह सही अनुवाद नहीं है । कुशोक बकुला ऐसा नहीं कह सकते । अध्यक्ष के आसन पर गुलाम मोहम्मद सादिक विराजमान थे । वे भी नेशनल कान्फ्रेंस से ही ताल्लुक रखते थे और शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के नजदीकी साथी थे । उनके लिए भी शेख अब्दुल्ला कायदे आजम ही थे । लेकिन इस समय वे अध्यक्ष के आसन पर थे । अजीब धर्मसंकट में फँस गए थे । इधर शेख अब्दुल्ला बार-बार चिल्ला रहे थे कि विधान सभा के सचिव को यह भाषण पढ़ने से रोका जाए । सादिक ने इसे मंजूर नहीं किया और शेख अब्दुल्ला ने टोका-टाकी जारी रखी । शेख अब्दुल्ला के एक दूसरे मंत्री दुर्गा प्रसाद धर तो उससे भी एक कदम आगे चले गए । उन्होंने कहा विधान सभा की कार्यवाही के लिए केवल दो ही अधिकृत भाषाएँ हैं, उर्दू और अंग्रेजी । क्योंकि बकुला ने अपना भाषण भोटी भाषा में दिया है इसलिए उनका यह भाषण सभा की कार्यवाही में शामिल न किया जाए । दुर्गा प्रसाद धर भूल गए थे कि जम्मू कश्मीर के तीन संभागों की भाषाएँ कश्मीरी, डोगरी और भोटी है । उर्दू और अंग्रेजी किसी भी संभाग की भाषा नहीं है । वैसे भी विधान सभा के किसी सदस्य द्वारा बजट पर दिया गया भाषण कार्यवाही से कैसे निकाला जा सकता है ? यह तो तभी संभव है जब किसी सदस्य ने अपने भाषण में असंसदीय भाषा का प्रयोग किया हो । उस समय तक

शेख अब्दुल्ला की आलोचना को असंसदीय करार नहीं दिया गया था । सादिक ने कहा कि यह अंग्रेजी अनुवाद कुशोक बकुला ने स्वयं दिया है, इसलिए उसके सही होने पर कोई तीसरा व्यक्ति आपत्ति कैसे कर सकता है। तकनीकी दृष्टि से इसे ही सही मानना होगा । लेकिन शेख अब्दुल्ला और उसके साथी अपने व्यवस्था के प्रश्न पर अडे रहे । तब सादिक ने बीच का रास्ता निकाला । शेख की बात भी रह जाए और नियमों के विपरीत भी न चलना पड़े । उन्होंने व्यवस्था दी कि कुशोक बकुला के भाषण के अंग्रेजी अनुवाद की किसी तीसरे भाषाविद से जाँच करवा ली जाए और उसके निर्णय के अनुसार ही आगे निर्णय लिया जाए । किसी ने शेख अब्दुल्ला को यह कहने का साहस नहीं किया कि यदि बकुला के भाषण में सरकार की आलोचना की गई है तो इससे क्रोधित होकर इतनी चिल्ल-पौं मचाने की क्या जरुरत है ? लोकतंत्र का मूल स्तम्भ तो आलोचना पर ही टिका हुआ है । नैशनल कान्फ्रेंस तो आज तक यही चिल्लाती रही थी कि पार्टी बोलने के अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए ही संघर्ष करती रही है । आज कुशोक बकुला ने अपनी पहली आलोचना से ही शेख अब्दुल्ला का पूरा रंग एक ही झटके में उतार कर रख दिया ।

कुशोक बकुला का भोटी में दिया गया भाषण और उसका अंग्रेजी अनुवाद श्रीनगर में राजस्व विभाग में कार्य कर रहे एक लद्दाखी श्री देचेन साहब को दिया गया जो मजहब से ईसाई था । देचेन भोटी और अंग्रेजी दोनों भाषाएँ जानता था । उसने भोटी भाषा के भाषण के एक-एक शब्द का अंग्रेजी अनुवाद के शब्दों के साथ मिलान किया और अपना निर्णय दे दिया। भाषण का अंग्रेजी अनुवाद सही था । जो अंग्रेजी में लिखा गया था वही कुशोक बकुला ने कहा था । यह रपट विधान सभा सचिव को दी गई और कुशोक बकुला रिम्पोछे का पूरा भाषण विधान सभा की कार्यवाही में दर्ज किया गया । कुशोक बकुला के इस भाषण ने जम्मू कश्मीर राज्य की भीतर की हालत को सबके सामने नंगा कर दिया । दूसरे दिन सभी समाचार पत्रों ने

बकुला के इस भाषण की चर्चा की । दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी दैनिक Hindustan Times Evening News ने 13 मई को कुशोक बकुला को उद्धृत करते हुए छापा कि लद्दाख को एक पाई तक नहीं दी गई । लेकिन जब बाद में वित्त मंत्री ने बजट की आलोचनाओं का उत्तर दिया तो बकुला के उठाए गए प्रश्नों का वे भी कोई समाधान वाला उत्तर नहीं दे सके।

लेकिन दिल्ली में इसकी प्रतिक्रिया हुई । प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु के सहायक सचिव मोहम्मद मथाई ने दूसरे ही दिन प्रधानमंत्री को बकुला द्वारा उठाए गए मुद्दों के सम्बंध में एक नोट भेजा । मथाई ने लिखा, ''मैं यह सुझाव नहीं दे रहा कि प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला से इसका स्पष्टीकरण माँगें । लेकिन मैं समझता हूँ कि सभी चीजों को ध्यान में रखते हुए, केन्द्रीय सरकार को इस भुला दिए गए क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । मैंने विश्वसनीय लोगों से सुना है कि लद्दाख में सूखे से प्रभावित लोगों की सहायता के लिए प्रधानमंत्री ने शेख साहिब को जो दस हजार रूपए भेजे थे, वे उन गरीबों तक पहुँचे ही नहीं । यकीनन शेख साहिब ने तो वे रूपए उस आदमी को भेजे ही होंगे जो लद्दाख का प्रभारी है। मैं नहीं जानता यह लद्दाख वाला अजीब आदमी किस प्रकार की प्रकृति का है । मेरी समझ में हर लिहाज से यह ठीक होगा कि यदि सम्भव हो तो लद्दाख को एक साम्प्रदायिक विकास प्रकल्प दिया जाना चाहिए ।''

मथाई के इस नोट में इतना तो स्वीकार कर ही लिया गया कि प्रशासन भ्रष्टाचार में धँसा हुआ है । यदि प्रधानमंत्री द्वारा प्रदेश के मुख्यमंत्री के माध्यम से लद्दाख की राहत के लिए भेजे गए दस हजार रूपए कोई बीच में डकार गया तो प्रशासन की हालत का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था । लेकिन जैसा कि मथाई खुद ही लिख रहे हैं, शेख अब्दुल्ला से उत्तर माँगने का साहस कोई नहीं कर रहा था । कुशोक बकुला यही उत्तर

शेख अब्दुल्ला से प्रदेश की संविधान सभा में माँग रहे थे और शेख उत्तर देने की बजाए व्यवस्था के प्रश्नों की ढाल तलाश रहे थे ।

इस घटना का मूल्याँकन करते हुए नवांग छेरिंग शकपा लिखते हैं, ''लद्दाख के विकास को लेकर शुरु में बकुला को शेख अब्दुल्ला की सरकार और पार्टी से बहुत आशाएँ थीं । लेकिन उन्हें जल्दी ही पता चल गया कि शेख अब्दुल्ला की सरकार जिन नीतियों को लेकर चल रही है उससे लद्दाखियों की आशाओं की पूर्ति नहीं होगी । बकुला ने अपनी हैसियत और कद का प्रयोग लद्दाख के सामाजिक-आर्थिक विकास हेतु प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई । यही कारण था कि उन्होंने विधान सभा में अपनी ही पार्टी और सरकार के खिलाफ डट जाने का साहस दिखाया । उस समय शेख अब्दुल्ला, जिन्हें शेर-ए-कश्मीर कहा जाता था और जो उस समय प्रधानमंत्री कहलाते थे, उन्हीं के अधीन लद्दाख आता था, के खिलाफ बोलना कुशोक बकुला के लिए सचमुच एक कठिन निर्णय था । लेकिन उन्होंने यह साहस दिखाया और वे रातों-रात सारे लद्दाख के निर्विवाद नेता बन गए । आधुनिक लद्दाख के निर्माता कहे जाने की ओर उनका यह पहला कदम था । ''(नवांग छेरिंग शकपो, कुशोक बकुला रिम्पोछे- सेंट एंड स्टेटसमैन पृष्ठ x)

अपने सम्बोधन में उन्होंने जो मुद्दे उठाए, उसकी प्रदेश में लम्बे अरसे तक चर्चा होती रही । शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने तो संविधान सभा में ही यह भाषण रुकवाने का भी प्रयास किया लेकिन विधान सभा अध्यक्ष गुलाम मोहम्मद सादिक ने ऐसा करने से मना कर दिया । बकुला सही अर्थो में जननायक सिद्ध हुए । प्रश्न केवल लद्दाख का ही नहीं था । शेख अब्दुल्ला धीरे-धीरे अपने असली रंग में आ रहे थे । अपने तानाशाही रवैये के चलते वे सामान्य जन से तो कटते जा ही रहे थे लेकिन वे कश्मीर घाटी को मातृभूमि से अलग करके स्वतंत्र देश के सपने भी देखने लगे थे । वे

जम्मू कश्मीर की तुलना पाकिस्तान के समकक्ष एक स्वतंत्र देश के रूप में ही करने लगे थे और उसको प्राप्त करने के लिए विदेशी ताकतों के साथ सांठ-गांठ भी कर रहे थे । मंत्रिमंडल ने शेख अब्दुल्ला में अविश्वास जाहिर कर किया । अन्ततः शेख अब्दुल्ला को 8 अगस्त 1953 को पद से हटा दिया गया और बन्दी बना लिया गया ।

उनके बाद बख्शी गुलाम मोहम्मद राज्य के नए प्रधानमंत्री बने । पाँच अक्टूबर 1953 को संविधान सभा में बख्शी मंत्रिमंडल के प्रति विश्वासमत के प्रस्ताव पर बोलते हुए कशुक बकुला ने कहा, "लद्दाख अत्यन्त पिछड़ा हुआ इलाका है । हमने पिछली सरकार के सामने कितनी ही माँगें रखीं लेकिन कोई एक भी पूरी नहीं की गई । कबायली हमले के दौरान लद्दाख की जंस्कार घाटी में अनेक गोम्पा नष्ट कर दिए । अनेकों को लूट लिया गया । लोगों के पशु तक पाकिस्तानियों ने लूट लिए । हमने शेख अब्दुल्ला की सरकार से अनेक बार कहा कि जिनकी सम्पत्ति लूट ली गई है, सरकार को उनकी सहायता करनी चाहिए । नष्ट किए गए गोम्पाओं की पुनः मरम्मत करवाई जाए । लद्दाख में राजस्व फसल के रूप में नहीं बल्कि नकद वसूला जाए । लद्दाख के स्कूलों में अध्ययन का माध्यम भोटी भाषा होनी चाहिए । लद्दाख में उचित क्षेत्र में नहरों की खुदाई करवाई जाए और यातायात के लिए कम से कम जीप चलने लायक एक सड़क बनाई जानी चाहिए । जैसा नया काश्मीर में कहा गया है, वैसा आत्मनिर्णय का अधिकार लद्दाख के लोगों को भी मिलना चाहिए । हमने अपनी इन माँगों के लिए धरना प्रदर्शन भी किए लेकिन पाँच साल बीत जाने पर भी हमारी बात सुनी नहीं गई । बख्शी साहिब लोकप्रिय हैं । सबसे बड़ी बात यह है कि वे जम्मू कश्मीर के भारत में विलय के पक्ष में हैं । "

कुशोक बकुला के ये उद्‌गार एक प्रकार से शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के खिलाफ लद्दाखियों का श्वेत पत्र कहा जा सकता है । इससे यह भी स्पष्ट है कि लद्दाख उसी के साथ है जो भारत के साथ है ।

परिणामतः सरकार को लद्दाख सम्बंधी मामलों के लिए अलग से एक मंत्रालय का गठन करना पड़ा । सरकार ने उनके द्वारा बजट-भाषण के दौरान उठाये गये सभी मुद्दों को स्वीकार कर लिया और उनके समाधान का वचन दिया। लेकिन व्यावहारिक स्तर पर बख्शी गुलाम मोहम्मद अनुभव कर रहे थे कि श्रीनगर में बैठ कर लद्दाख का प्रशासन चला पाना बहुत कठिन है । इसलिए उन्होंने नेहरु से प्रार्थना की कि, ''श्रीनगर में बैठ कर लद्दाख के लोगों से न्याय कर पाना संभव नहीं है, अतः केन्द्र सरकार लद्दाख का प्रशासन स्वयं संभाल ले तो बेहतर होगा ।'' (ICCR, International conference on kushok bakula Rinpoche & Saint and Statesman, page 6) पंडित नेहरु उनके इस सुझाव से तो सहमत नहीं हुए लेकिन गुलाम मोहम्मद बख्शी की सरकार ने लद्दाख मामलों का नया मंत्रालय गठित किया और नबम्वर 1953 में कुशोक बकुला को उस मंत्रालय में उपमंत्री के तौर पर शामिल किया । मंत्री बनना उनका लक्ष्य नहीं था । वे तो लद्दाख के विकास का रास्ता तलाश रहे थे । मंत्री पद की शपथ लेने के बाद उन्होंने कारगिल में कहा, ''मैं एक भिक्षु हूँ और नियम के अनुसार तो मुझे राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए था । लेकिन मैं शताब्दियों से चली आ रही इस परम्परा को तोड़ रहा हूँ क्योंकि मेरे दिल में लद्दाख का विकास बसा हुआ है ।'' (नवांग छेरिंग शकपो, कुशोक बकुला रिम्पोछे- सेंट एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 55) उन्होंने उपमंत्री के रूप में लद्दाख के समग्र विकास की योजनाओं पर कार्य शुरु किया तो उन्हें बड़ी निराशा हाथ लगी । नैशनल कान्फेंस ने उन्हें पद दे दिया था लेकिन उसमें निहित शक्ति नहीं दी। बकुला पद के तो इच्छुक भी नहीं थे । उन्होंने त्यागपत्र की पेशकश कर दी। बख्शी साहिब मामले की गंभीरता को समझ गए और उन्होंने उपमंत्री को कुछ अधिकार भी दिए । लेकिन कुल मिला कर राज्य सरकार लद्दाख की समस्यायों को गंभीरता से नहीं ले रही थी, ऐसा समझते कुशोक बकुला को कितनी देर लगती ? तभी बख्शी गुलाम मोहम्मद, पंडित जवाहरलाल नेहरु की कामराज योजना का शिकार हो गए । बख्शी के बाद शम्सुद्दीन मुख्यमंत्री

बने लेकिन वे भी कुछ महीने बाद ही मुए-मुकद्दस के किस्से का शिकार हो गए । अब राज्य के मुख्यमंत्री गुलाम मोहम्मद सादिक बने । उन्होंने बकुला को राज्य मंत्री बना दिया । लेकिन बकुला को पद नहीं अधिकार चाहिए थे ताकि वे लद्दाख के लिए व्यावहारिक रूप से कुछ कर पाते । दुर्भाग्य से अधिकार देने में सादिक को भी हिचकिचाहट हो रही थी । बकुला ने सादिक को अपना त्यागपत्र थमा दिया । सादिक ने दस सदस्यीय लद्दाख विकास परिषद का गठन किया और रिम्पोछे को उसका अध्यक्ष बना दिया । इस परिषद के पास पर्याप्त अधिकार एवं पूँजी थी ।

इस प्रकार 1953 से लेकर 1967 तक वे राज्य मंत्रिमंडल में शामिल रहे । लद्दाख को पहली बार शासन में प्रत्यक्ष भागीदारी मिली । अब सबसे बड़ा दायित्व प्रदेश में राष्ट्रवादी शक्तियों के हाथ मजबूत करना था । जेल में बन्द शेख मोहम्मद अब्दुल्ला ने अलगाववादी शक्तियों से हाथ मिला लिया था । ऐसे समय में लद्दाख के प्रतिनिधि होने के नाते कुशोक बकुला पर इस षडङंत्र से लड़ने का दायित्व आया था । पाँच फरवरी 1954 को उन्होंने राज्य की विधान सभा में बोलते हुए स्पष्ट किया, ''हम लद्दाख के लोग शुरु से ही बार-बार कह रहे हैं कि हम मातृभूमि भारत का अंग हैं । हम भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का हिस्सा बने हैं । लेकिन कोई यह न समझे कि हमने ऐसा भावनाओं में बह कर किया है । ऐसा नहीं है । हमारा विश्वास है कि जाति, सम्प्रदाय और नस्ल में बिना भेदभाव किए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सभी क्षेत्रों में सभी को समान अवसरों के लिए भारतीय संविधान अत्युत्तम है । हमारी इच्छा पंथनिरपेक्ष विधान की है, वह भारतीय संविधान में ही पूरी हो सकती है । भारत का संविधान मानवता की समानता पर आधारित है । भारत का संविधान जम्मू कश्मीर के सभी प्रकार के विकास का पूर्ण अवसर प्रदान करता है । यह केवल लद्दाख के लोगों का ही मत नहीं है बल्कि करगिल के लोगों का भी यही मत है । यह मत भी व्यक्त किया गया है कि जम्मू कश्मीर को अपनी इच्छानुसार भारत से अलग

होने का भी अधिकार मिलना चाहिए । मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ । यह विचार न तो जम्मू कश्मीर के लिए लाभदायक है और न ही भारत के हित में होगा । अभी भी प्रदेश में अनिश्चितता और असुरक्षा का वातावरण बना रहता है । हमारी हार्दिक इच्छा तो देश में सम्बंधों को और भी मजबूत करने की है लेकिन अलग होने की बातें करने से यह संशय और भी गहराता जाएगा । इससे हमारी प्रगति में बाधा पड़ेगी । इससे उन लोगों को भी लाभ होगा जो अभी भी राज्य के भीतर और बाहर गड़बड़ करने पर आमादा हैं । वे अनिश्चय के इस वातावरण में प्रदेश में शान्ति भंग करने में मशगूल हो जाएँगे । भारत से रिश्ता हमारी इच्छा ही नहीं बल्कि हमारा पावन कर्तव्य भी है । अलगाव की बातों से विकल्प पाकिस्तान ही बचेगा । उसके पीछे चलना अन्धकार की यात्रा ही कही जाएगी । ऐसी स्थिति में जम्मू कश्मीर के तीनों अंगों का एक साथ रहना भी मुश्किल हो जाएगा । एक और विकल्प आजादी का भी कहा जा रहा है । लेकिन वह विकल्प अव्यवहारिक है । शत्रु देश आक्रमण करेगा तो हमारा क्या हश्र होगा ? हमारा सभी प्रकार का विकास भारत पर ही निर्भर है । भारत का संविधान हमारी रक्षा करता है । उसमें व्यक्ति-व्यक्ति में भेद नहीं होता । हमारा संविधान हमें आंतरिक स्वतंत्रता देता है । शेष कमी भारत पूरी करता है । भारत ऐसा करता रहा है और भविष्य में भी करता रहेगा । इसलिए मैं भारत से अलग होने के विचार से सहमत नहीं हूँ ।'' बकुला रिम्पोछे ने रायशुमारी या जनमत संग्रह का भी विरोध किया । उन्होंने कहा रियासत का भारत में विलय अंतिम है । ''लद्दाख का रायशुमारी की इस माँग से कुछ लेना देना नहीं है ।'' (organiser 11 जनवरी 1954) यही बात उन्होंने अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के सदस्यों को सम्बोधित करते हुए कही । (organiser 11 जनवरी 1954)

जम्मू कश्मीर में सत्ता परिवर्तन हो गया था । बख्शी गुलाम मोहम्मद नए मुख्यमंत्री बने थे । कुशोक बकुला स्वयं मंत्रिमंडल में लद्दाखी

मामलों के उपमंत्री हो गए थे । मार्च–अप्रेल में एक बार फिर राज्य की विधान सभा में बजट पेश हुआ । मई 1952 में कुशोक बकुला के बजट भाषण पर ही इतना विवाद हो गया था जिसकी चर्चा देश से बाहर भी हुई थी । लेकिन अब विकास की हवा लद्दाख में भी पहुँच गई थी । सड़कें भी बन रही थीं और नए स्कूल भी खुल रहे थे । बकुला रिम्पोछे एक बार फिर बोलने के लिए खड़े हुए । उन्होंने अपने पुराने 1952 के भाषण की चर्चा की। उन्होंने कहा कि, ''जम्मू कश्मीर में सत्ता परिवर्तन से अमूल–चूल परिवर्तन हुआ है । अब लद्दाख के साथ उपनिवेश जैसा व्यवहार नहीं होता बल्कि उसे बराबर का भागीदार माना जाता है । मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिस प्रकार जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद और प्रधाानमंत्री जवाहर लाल नेहरु रुचि ले रहे हैं उससे लद्दाख में पिछड़ापन बीते युग की बात रह जाएगी । अब लद्दाख के लिए जो सामान आता है वह काला बाजार में नहीं जाता बल्कि लद्दाखियों के पास ही पहुँचता है । मुझे यहाँ विधान सभा में यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि लद्दाख को अपने आन्तरिक मामलों में स्वायत्तता मिलेगी और लद्दाख, जम्मू कश्मीर का ही अंग रहेगा ।'' (kashmir April 1955) लेकिन शायद जल्दी ही उनका मोहभंग हो गया । उन्हें लगने लगा था सवाल जम्मू कश्मीर सरकार की नीयत का है और उन्हें उस नीयत पर ही संदेह होने लगा था ।

25 अक्टूबर 1956 को एक बार फिर कुशोक बकुला ने स्पष्ट किया कि जम्मू कश्मीर भारत का अटूट हिस्सा है । जम्मू कश्मीर में राज्य संविधान लागू होने के अवसर पर उन्होंने कहा, ''यह अधिनियम पंथ निरपेक्षता पर आधारित है । इस अधिनियम में यह अंतिम रूप से और बिना किसी उपबन्ध के घोषणा कर दी गई है कि यह प्रदेश भारत का अविभाज्य अंग है । अब यह अविभाज्यता प्राकृतिक नियम के अनुसार अपरिवर्तनशील हो गई है । यही इस अधिनियम की आत्मा है । इससे अलगाव की बातें करने वालों की जुबान बन्द हो जाएगी । अब जम्मू कश्मीर उस महान

भारत, जो उच्च मानवीय आदर्शों से प्रेरित है, जिसकी महान शानदार परम्पराएँ हैं, विश्व जिसकी ओर मार्गदर्शन के लिए देखता है, जो विश्व में शान्ति का प्रेरक है, का अटूट अंग है । इससे हमारी प्रसन्नता का पारावार नहीं है । सारा लद्दाख इस अवसर पर अभिभूत है ।'' कुशोक बकुला के इन उद्‌गारों से स्पष्ट है कि वे पहले दिन से ही इस काम में लगे हुए थे कि भारत की संघीय सांविधानिक व्यवस्था का हिस्सा बना जाए ताकि लोकतांत्रिक प्रणाली के लाभ आम लोगों तक पहुँचें ।

26 जनवरी 1957 को जम्मू कश्मीर में नया जम्मू कश्मीर संविधान लागू कर दिया गया । उसके बाद प्रदेश में विधान सभा के लिए 1957 में चुनाव सम्पन्न हुए । कुशोक बकुला एक बार फिर लेह से निर्विरोध चुन लिए गए । लद्दाख में कुशोक बकुला की लोकप्रियता का अन्दाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1962 में विधान सभा के चुनावों में लेह विधान सभा सीट पर उनके मुकाबले एक निर्दलीय प्रत्याशी छेरिंग फुंछोक खड़ा हो गया । चुनाव में कुल मिला कर 20653 वैध मत पड़े । इनमें से 20095 मत कुशोक बकुला को मिले । यह किसी प्रत्याशी को अब तक मिले मतों का रिकार्ड था । इस प्रकार बकुला रिम्पोछे 1952 से लेकर 1967 तक जम्मू कश्मीर संविधान सभा/विधान सभा के सदस्य रहे । इस कालखंड में वे उपमंत्री और राज्य मंत्री भी रहे । उन्होंने इस कालखंड में लद्दाख को विकास के मार्ग पर बढ़ाया ।

कुशोक बकुला के प्रयासों का ही फल था कि लद्दाख को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया गया । लद्दाख के लोग इसकी लम्बे अरसे से माँग कर रहे थे । लद्दाख के लोगों के लिए जनजाति या ट्राईब का अर्थ यह नहीं था कि वे संस्कृति और सभ्यता में किसी से पिछड़े हुए थे । भगवान बुद्ध के बचनों में विश्वास करने वाले लद्दाखी मानव मूल्यों के संरक्षण में तथाकथित सभ्य समाज से कहीं आगे थे । सांस्कृतिक मूल्यों पर

आधारित उनका आचरण तथाकथित सभ्य समाज से भी बेहतर ही था । लद्दाख की समस्या उसकी निर्धनता और भोगौलिक कारणों से भौतिक संरचना का न होना था । बहुत प्रयास से यदि लद्दाख में शिक्षा का प्रयास हो भी रहा था तो नव शिक्षितों को नौकरी नहीं मिलती थी । इस अन्तर्विरोध से निकलने का एक ही रास्ता था कि लद्दाख को जनजाति क्षेत्र का दर्जा दिया जाए । उन्होंने लोक सभा में इसकी ओर सभी का ध्यान आकर्षित किया और यह भी बताया कि हम लद्दाख के लिए अनुसूचित जनजाति का दर्जा क्यों माँगते हैं । उन्हेंने कहा, ''लद्दाख को अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित क्षेत्र न घोषित करने से लोगों को वहाँ हर प्रकार का सुभीता नहीं मिल रहा है । लद्दाख के लड़के आजकल पढ़ने के इच्छुक हैं । वे पढ़ने के लिए राज्य से बाहर भी जाना चाहते हैं । लेकिन उनको पूरी सुविधाएँ नहीं मिल पातीं । इस साल लद्दाख के तीन लड़के आई. ए. एस. की परीक्षा देना चाहते हैं लेकिन उनका सफल होना मुश्किल है । इसका कारण लद्दाख की बुनियादी तालीम का कमजोर होना है । वहाँ के अध्यापक अच्छे नहीं है । वहाँ पर साईस के टीचर और साईस का सामान नहीं है । ऐसी हालत में वहाँ के लड़के यहाँ के लड़कों से मुकाबला नहीं कर सकते । लेकिन शैडयूल एरिया घोषित होने से उनको कुछ लाभ मिल सकता है ।'' (लोक सभा 28 जुलाई 1971) इस से स्पष्ट है कि बकुला रिम्पोछे जनजाति की उस अवधारणा से सहमत नहीं थे कि लद्दाख के लोग सभ्यता-संस्कृति में पिछड़े रह गए हैं । बल्कि वे लद्दाख के भौतिक विकास का रास्ता तलाश रहे थे । लेकिन जम्मू कश्मीर सरकार इसका विरोध कर रही थी । उसका एक ही तर्क था, इससे केन्द्र सरकार का दखल बढ़ जाएगा । राज्य सरकार केन्द्र सरकार के दखल को आड़ बना कर अपने ही राज्य के एक संभाग के लोगों को दबा कर रखना चाहती थी । बकुला रिम्पोछे राज्य सरकार के इस व्यवहार से अच्छी तरह परिचित थे । आखिर वे इतने सालों से सरकार के भीतर रहकर यही सब तो देख रहे थे । उन्होंने सरकार के भीतर और बाहर,

दोनों जगह ही इस न्यायोचित माँग के लिए संघर्ष जारी रखा । अन्ततः उन्हें अपने इस संघर्ष में सफलता मिली और लद्दाख को यह दर्जा मिला ।

लेकिन धीरे धीरे लद्दाखियों को लगने लगा था कि श्रीनगर से लद्दाख का प्रशासन अच्छे तरीके से नहीं चलाया जा सकता । बहुत साल पहले राज्य के उस समय के मुख्यमंत्री बख्शी गुलाम मोहम्मद ने यही बात पंडित जवाहरलाल नेहरु को कही थी । बख्शी ने उनसे यह प्रार्थना भी की थी कि लद्दाख को केन्द्र शासित क्षेत्र बना दिया जाए । उस समय नेहरु ने इस माँग को स्वीकार नहीं किया था । श्रीनगर में ही लद्दाखी मामलों का मंत्रालय बना कर समस्या का समाधान निकालने की कोशिश की गई । उस समय कुशोक बकुला भी इससे संतुष्ट थे क्योंकि कम से कम लद्दाख हाशिए से बाहर निकल आएगा । परन्तु इतने लम्बे अरसे के बाद यह अनुभव होने लगा था कि जम्मू कश्मीर की पूरी राजनीति और प्रशासन कश्मीर घाटी केन्द्रित है । वह जम्मू संभाग से ही न्याय नहीं कर पाता या करना नहीं चाहता तो इस पूरे परिप्रेक्ष्य में लद्दाख की क्या बिसात है । 1964 में जम्मू कश्मीर के मुख्यमंत्री गुलाम मोहम्मद सादिक बने । उन्होंने इस समस्या का हल अपनी तुच्छ राजनीति के अनुसार करने का निर्णय किया । सादिक ने लद्दाख में विभिन्न मठों में आपस में फूट डालने की कोशिश की। थिकसे मठ को कुशोक बकुला के पेथुप मठ के खिलाफ खड़ा करने की कोशिश की । थिकसे के सोनम नोरबु और खानपो रिम्पोछे को कुशोक बकुला के खिलाफ उभारने के प्रयास किए । लेकिन सौभाग्य से उन्हें इन प्रयासों में बहुत ज्यादा सफलता नहीं मिली । इसी प्रकार करगिल के शिया और बल्ती समाज को बौद्धों के खिलाफ भड़काने के साम्प्रदायिक प्रयास किए । लेकिन इस सबके बावजूद वे समस्त लद्दाखियों की एकता को खंडित नहीं कर पाए और कुशोक बकुला का कद कम नहीं हुआ ।

1965 में नैशनल कान्फ्रेंस का विलय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में हो गया । इस प्रकार कुशोक बकुला भी कांग्रेस के सदस्य हो गए । यह एक

प्रकार से उनका मुक्ति पर्व था । वे लम्बे अरसे से लद्दाख के हितों की पूर्ति के लिए नैशनल कान्फ्रेंस को ढो रहे थे । उससे उन्हें छुटकारा मिल गया । 1967 में वे चौथी लोकसभा के लिए लेह क्षेत्र से चुन लिए गए । 1971 में वे एक बार फिर इसी क्षेत्र से पाँचवीं लोकसभा के लिए चुने गए । इस प्रकार वे 1977 तक दस साल लोक सभा के सदस्य रहे । इस दौरान उन्होंने रक्षा मंत्रालय, शिक्षा मंत्रालय और योजना मंत्रालय की संसदीय सलाहकार समितियों में सक्रिय भागीदारी की । लोकसभा में वे निरन्तर लद्दाख की समस्याओं और उसके विकास से ताल्लुक रखने वाले प्रश्न उठाते रहे । लेकिन 26 जून 1975 में देश में तानाशाही घोषित हो जाने के कारण वे राजनीति से उपराम रहने लगे थे । हिंसा और छल-कपट की राजनीति में उन्हें पहले भी कभी रुचि नहीं थी लेकिन देश में मौलिक अधिकारों को ही प्रतिबन्धित कर दिए जाने के कारण वे राजनीति से उदासीन हो गए थे । इसका एक दूसरा कारण भी था । लद्दाख में उन्होंने स्वयं अपने लोगों के लोकतान्त्रिक अधिकारों के लिए लम्बा संघर्ष किया था । अब वे लोकतंत्र की इस हत्या में भागीदार कैसे हो सकते थे ? 1975 में इन्दिरा-शेख समझौते के अन्तर्गत शेख मोहम्मद अब्दुल्ला एक बार फिर राज्य के मुख्यमंत्री बने और उन्होंने नए सिरे से नैशनल कान्फ्रेंस को पुनर्जीवित किया। परन्तु कुशोक बकुला कांग्रेस में ही बने रहे । कुशोक बकुला इन नई राजनीति से प्रसन्न नहीं थे । वे शेख मोहम्मद अब्दुल्ला को अच्छी तरह समझ चुके थे । शेख साम्प्रदायिक कारणों से लद्दाख की अवहेलना कर रहे थे । शेख के मुख्यमंत्री बनने के कुछ महीने बाद ही आपात स्थिति की घोषणा हो गई । यह सब कुछ बकुला रिम्पोछे को विचलित करने के लिए पर्याप्त था ।

इस सन्दर्भ में उनका 22 मार्च 1976 को दिया गया भाषण अत्यन्त महत्वपूर्ण है । कुछ लोग उनके इस भाषण की तुलना 12 मई 1952 को जम्मू कश्मीर विधान सभा में दिए गए उनके ऐतिहासिक भाषण से

करते हैं । श्रीनगर का भाषण भी उन्होंने राज्य के बजट को लेकर ही दिया था और 22 मार्च 1976 का उनका यह भाषण भी केन्द्र सरकार द्वारा प्रस्तुत किए गए बजट को लेकर ही था । उस समय वे नैशनल कान्फ्रेंस के सदस्य थे और उसी सरकार की नीतियों की आलोचना कर रहे थे । इस समय वे कांग्रेस के सदस्य थे और उसी सरकार के बजट पर लद्दाख के सन्दर्भ में प्रहार कर रहे थे । यह आलोचना सामान्य प्रकार की चलताऊ आलोचना नहीं थी बल्कि यह नीतियों को लेकर थी और उनकी भाषा में तल्खी थी । आपात स्थिति में किसी सदस्य द्वारा इस प्रकार के भाषण की किसी को आशा नहीं थी । लेकिन अबके भाषण और पच्चीस साल पूर्व श्रीनगर के भाषण में एक और महत्वपूर्ण अन्तर था । उनके श्रीनगर के भाषण की देश-विदेश में काफी चर्चा हुई थी लेकिन उनका यह भाषण मीडिया में अचर्चित रहा क्योंकि आपात स्थिति के कारण मीडिया पर सेंसर लगा हुआ था और वह बिना सरकार की अनुमति के कुछ भी छाप नहीं सकता था । अन्यथा इस भाषण से भी उतना ही तहलका मचता, शायद उससे भी ज्यादा, यदि इसकी पूरी रपट मीडिया में आ जाती । बकुला रिम्पोछे ने कहा, ''मैं उस राज्य से आता हूँ जिसे जम्मू-कश्मीर कहते हैं । इसमें जम्मू का और कश्मीर का नाम तो आता है लेकिन लद्दाख का कहीं नाम भी नहीं आता । लद्दाख में कोई नहीं आता । इसलिए वहाँ की सही रिपोर्ट नहीं मिलती । .... हमारे यहाँ प्रधानमंत्री भी आई होंगी और डिफेंस से ताल्लुक रखने वाले मंत्री भी आए होंगे । लेकिन हमारे क्षेत्र के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया ।'' 1952 को उन्होंने जम्मू कश्मीर के वित्त मंत्री से पूछा था, बजट में लद्दाख का कहीं नाम ही नहीं है । बजट में लद्दाख के लिए कितनी राशि आबंटित है ? लगभग यही प्रश्न वे इन्दिरा गान्धी की सरकार के वित्त मंत्री से पूछ रहे थे । उन्होंने पूछा, ''मैं जानना चाहता हूँ कि जो 68 करोड़ रुपए जम्मू कश्मीर के लिए मिले हैं, उनमें से लद्दाख को कितने मिलेंगे ? .... आज जो रुपया केन्द्र से मिलता है, उसमें से लद्दाख का कितना हिस्सा है,

इसका उल्लेख न बजट में किया गया है और न ही वे हमें बताते हैं । जो पैसा केन्द्र से हमारे लिए दिया जाता है, वह कहाँ जाता है और किस काम पर खर्च होता था, कुछ मालूम नहीं ।'' आपातस्थिति में सरकार ने पिछड़े क्षेत्रें की आर्थिक उन्नति के लिए एक बीस सूत्रीय कार्यक्रम घोषित किया था और उसका प्रचार–प्रसार भी काफी किया जा रहा था । कुशोक बकुला ने चलते–चलते उस पर भी टिप्पणी की । ''आपने बीस सूत्रीय कार्यक्रम में कहा है कि पिछड़े इलाकों की ओर विशेष ध्यान जिया जाएगा । हमारा लद्दाख हर क्षेत्र पिछड़ा हुआ है । लेकिन फिर भी इसकी ओर कोई ध्यान नहीं देता । यह बड़े अफसोस की बात है ।'' लेकिन यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बकुला रिम्पोछे लद्दाख के विकास की बात केवल संकुचित क्षेत्रीय हितों को ध्यान में रख कर नहीं करते थे । उनके सरोकार देश की सुरक्षा के सरोकारों से जुड़े हुए थे । इसको उन्होंने अपने भाषण में स्पष्ट भी किया । ''आप सब जानते हैं कि लद्दाख एक बहुत ही महत्वपूर्ण जगह है । हमारे सामने एक तरफ चीन बैठा है और दूसरी तरफ पाकिस्तान बैठा है। यह ठीक है कि पाकिस्तान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । लेकिन चीन जो हमारे सामने बैठा है, वहाँ बड़े–बडे प्रोजेक्ट बन रहे हैं । इसके मुकाबले यदि आप लद्दाख में देखें तो कुछ नहीं हो रहा । आप शुरु से ही लद्दाख को देखें । 1953 के बाद वहाँ क्या हुआ ? 1959 के बाद वहाँ क्या हुआ ? 1970 के बाद वहाँ क्या हुआ ? कोई भी विकास का काम नहीं हुआ । लद्दाख 49000 वर्ग मील में फैला हुआ है । इसके चारों तरफ दुश्मन खड़े हैं। लेह इसका जिला मुख्यालय है । वहाँ से केवल 150 मील की दूरी पर चीन बैठा है । उसके इलाके में जो तरक्की हो रही है, वह हम सुनते रहते हैं। उसका मनोवैज्ञानिक असर अभी हमारे लोगों पर नहीं पड़ा है, लेकिन भविष्य में पड़ सकता है ।'' रिम्पोछे की यह बहुत सूक्ष्म चेतावनी है । चीन विकास के माध्यम से लद्दाख में मनोवैज्ञानिक युद्ध लड़ रहा है । लेकिन भारत सरकार इसकी ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दे रही । बाकी केवल

फुटनोट के लिए, अपना यह भाषण देने से पहले बकुला रिम्पोछे ने आपात स्थिति की प्रशंसा करने की रस्म निभा दी थी । उन्होंने अपना भाषण ही उन दिनों की इस रस्म से शुरु किया था । ''हमारी महान नेता प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी जी ने जो आपात स्थिति की घोषणा की है, उसके बाद इस देश में बहुत सुधार हुआ है ।'' उन दिनों कांग्रेसी क्षेत्रों में बकुला रिम्पोछे के इस भाषण की बहुत चर्चा हुई थी । (1976 के भाषण के ये सभी उद्धरण 22 मार्च 1976 की लोक सभा कार्यवाही से लिए गए है)

इसके बाद भी वे कांग्रेस में तो बने रहे लेकिन उन्होंने कहना शुरु कर दिया था कि वे लद्दाख की राजनीति में उस समय शामिल हुए थे जिस समय वहाँ और कोई व्यक्ति इस क्षेत्र के अधिकारों हेतु लड़ने के लिए उपलब्ध नहीं था । लेकिन अब इतने साल में बहुत से युवा इस काम के लिए तैयार हो गए हैं । संभाग में राजनैतिक चेतना भी बढ़ी है । वैसे भी पूरे जम्मू कश्मीर को मध्यकालीन चेतना से बाहर निकलना होगा और महिलाओं को भी राजनीति में अवसर देने होंगे । लद्दाख इस दिशा में अन्य संभागों को रास्ता दिखा सकता है । इसलिए उन्होंने लद्दाख की लोक सभा सीट से रानी पार्वती देवी को नामांकित किया और उनके लिए प्रचार भी किया । पार्वती देवी ने नैशनल कान्फ्रेंस को हरा कर यह सीट जीती भी ।

कुशोक बकुला अब सब छोड-छाड कर पुनः अपने मठ पेथुप चले जाने की योजना बना रहे थे कि उन्हें नए प्रधानमंत्री मोरार जी देसाई की ओर से निमंत्रण प्राप्त हुआ । मोरार जी देसाई ने बकुला रिम्पोछे को नए गठित किए जा रहे राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग में बौद्ध समाज की ओर से सदस्यता स्वीकार करने का आग्रह किया । बकुला रिम्पोछे को सचमुच आश्चर्य हुआ । वे जीवन भर कांग्रेस से जुड़े रहे थे । उन्होंने उसके लिए प्रचार किया था लेकिन नई सरकार के मुखिया उनसे शासकीय पद संभालने का आग्रह कर रहे थे । मोरारजी भाई जानते थे कि बकुला रिम्पोछे राजनीति

की संकरी गलियों से बहुत दूर हैं । लोक सभा में उनके 1976 के भाषण को भी राजनैतिक हल्के भूले नहीं थे । उन्होंने सदा जनहित और राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर ही काम किया है । क्षुद्र राजनैतिक हितों को उन्होंने कभी प्राथमिकता नहीं दी । इस प्रकार देश की पहली गैर कांग्रेसी सरकार में बकुला रिम्पोछे अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य बने । वे इस पद पर 1989 के अन्त तक रहे । 1990 में भारत सरकार ने कुशोक बकुला को मंगोलिया में भारत का राजदूत नियुक्त किया ।

इसी कालखंड में लद्दाख संभाग को केन्द्र शासित क्षेत्र का दर्जा देने का जन आन्दोलन शुरु हो गया । इस आन्दोलन में मुख्य भूमिका लद्दाख बुद्धिस्ट एसोसिएशन निभा रही थी । कुशोक बकुला इस आन्दोलन के साथ थे लेकिन उन्हें अपनी मर्यादा का भी ध्यान था । वे उस समय मंगोलिया में भारत के राजदूत नियुक्त हो चुके थे । मंगोलिया से बीच-बीच में जब लेह आते थे तो इस आन्दोलन के बारे में प्राय: मौन रह जाते थे। 1995 में लेह के लिए लद्दाख स्वायत्त पर्वतीय विकास परिषद का गठन हुआ । अंग्रेजी भाषा में इसे Ladakh Autonomous Hill Development Council कहा जाता है । बाद में इसी की तर्ज पर लद्दाख के दूसरे जिले करगिल के लिए भी परिषद का गठन किया गया । लेकिन कुशोग बकुला का अन्तिम लक्ष्य लद्दाख को केन्द्र शासित राज्य का दर्जा दिलवाना ही था, इसमें कोई संशय नहीं । जिन दिनों लालकृष्ण आडवाणी देश के उप प्रधानमंत्री थे, वे एक बार लेह गए । बकुला रिम्पोछे की तबीयत ठीक नहीं थी लेकिन फिर भी वे हठपूर्वक उनसे मिलने पहुँचे । उन्होंने आडवाणी से लद्दाख को केन्द्र शासित क्षेत्र का दर्जा देने का आग्रह किया । वे तर्क देकर बताते रहे कि इससे भारत की अखंडता और सम्प्रभुता और मजबूत होगी । दरअसल बकुला जीवन भर लद्दाख के लोगों और उनकी समस्या के समाधान के लिए जूझते रहे । जीवन के अन्तिम दिनों में वे प्रयास कर रहे थे कि लद्दाख में आधुनिक विद्याओं का एक विश्वविद्यालय भी स्थापित किया जाए । इसको लेकर वे

कितने उत्सुक थे इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि अपनी मृत्यु के कुछ महीने पूर्व जुलाई 2003 में लेह की एक सार्वजनिक सभा में उन्होंने तत्कालीन मुख्यमंत्री मुफती मोहम्मद सैयद से इस हेतु आग्रह किया था । उनका यह सपना कब पूरा होगा, यह तो भविष्यवक्ता ही जानें ।

लद्दाख में शिक्षा प्रसार में उनका योगदान – तिब्बत पर चीन का कब्जा हो जाने से हिमालयी क्षेत्रों में बौद्ध दर्शन के अध्ययन–अध्यापन पर भी एक नया संकट उपस्थित हुआ था जिसके दुष्परिणामों को बकुला स्पष्ट देख रहे थे । तिब्बत पर चीन के कब्जे से पूर्व भारत के अनेक प्रदेशों मसलन अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, उत्तराँचल, हिमाचल प्रदेश के लाहुल स्पिति और किन्नौर, जम्मू कश्मीर के लद्दाख से हजारों छात्र तिब्बत के मठों/विहारों में बौद्ध दर्शन का अध्ययन करने के लिए जाते थे । ल्हासा के तीन प्रसिद्ध विश्वविद्यालय द्रेपुंग, गांदेन और सेरा तो भारतीय विद्यार्थियों के लिए मुख्य आकर्षण थे । लेकिन चीन ने ल्हासा पर कब्जा कर लेने के बाद इन तीनों विश्वविद्यालयों को बहुत हद तक नष्ट कर दिया था । वैसे भी किन्नौर, लाहुल स्पिति और लद्दाख से ल्हासा जाने के रास्ते बन्द हो गए । इससे पहले तो लद्दाख के हर घर से एक लड़का तिब्बत में पढ़ने के लिए जाता था और लामा बनता था । लेकिन अब लामा बनने की बात तो दूर बौद्ध दर्शन की पढ़ाई कर पाना मुश्किल हो गया था । अब भारत के विद्यार्थियों की बात तो दूर, तिब्बत के भीतर ही भिक्षुकों के लिए अध्ययन के ये द्वार बन्द हो रहे थे । यदि यह स्थिति ऐसे ही बनी रही तो निश्चय ही बौद्ध दर्शन की अध्ययन परन्परा को भीषण आघात पहुँचेगा । इसलिए इसकी वैकल्पिक व्यवस्था करना बकुला रिम्पोछे की प्राथमिकता थी । कुशोक बकुला ने भारत सरकार से आग्रह किया कि लद्दाख के छात्रें को छात्रवृत्ति प्रदान की जाए ताकि वे किसी तरीके से अपना अध्ययन जारी रख सकें । 1959 में भारत सरकार ने इस उद्देश्य के लिए सोलह छात्रवृत्तियाँ स्वीकार की । इस प्रकार लद्दाख के सोलह छात्र वाराणसी सारनाथ में पढ़ने

के लिए गए । वहाँ इनके आवास व अध्ययन की व्यवस्था महाबोधि सोसायटी में की गई । इसी प्रकार 1961 में श्रीलंका में बौद्ध धर्म दर्शन का अध्ययन करने हेतु जाने वाले छात्रों के लिए भी पाँच छात्रवृत्तियाँ स्वीकार कीं ।

लेकिन यह समस्या का स्थाई समाधान नहीं था । बकुला चाहते थे कि बौद्ध दर्शन के अध्ययन के लिए लेह में ही कोई शिक्षा संस्थान स्थापित किया जाए । इस हेतु उन्होंने लद्दाख बौद्ध परिषद और अखिल लद्दाख गोन्पा परिषद को प्रेरित किया । उनके इन प्रयासों का ही फल था कि 1959 में केवल बीस छात्रों से लेह में चोगलमसर नामक स्थान पर बौद्ध दर्शन विद्यालय स्थापित किया गया । उस समय इस विद्यालय को किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती थी । यह सार्वजनिक प्रयासों से ही शुरु किया गया था । तेईस अक्टूबर 1959 को इसका उद्‌घाटन चौदहवें दलाई लामा के वरिष्ठ गुरू लिंग रिनपोछे ने किया । बाद में यही विद्यालय केन्द्रीय बौद्ध अध्ययन संस्थान के रुप में विकसित हुआ और 1962 में केन्द्र सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने इसका वित्तीय व प्रबन्धन का भार स्वीकार किया । इसे वाराणसी के सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बंधित किया गया । तदुपरान्त इस संस्थान को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालय के समकक्ष मान्यता दी ।

लेकिन बौद्ध दर्शन के अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ आधुनिक शिक्षा की भी लद्दाख में महती आवश्यकता थी । परम्परागत शिक्षा की व्यवस्था तो कुछ सीमा तक मठों में थी लेकिन आधुनिक शिक्षा के नाम पर सन्नाटा था । कुशोक बकुला जानते थे कि आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में लद्दाख अत्यन्त पिछड़ा हुआ है । उसका कारण निर्धनता के अतिरिक्त हिमालय के उच्च क्षेत्र में स्थित होना भी था । इतना अन्दाजा उन्हें भी हो गया था कि यदि लद्दाख को आधुनिक युग के साथ कदम से कदम

मिला कर चलना है तो उसे पारम्परिक बौद्ध शिक्षा के साथ–साथ आधुनिक शिक्षा भी ग्रहण करनी होगी । उनकी इच्छा थी कि पढ़ने के इच्छुक लद्दाखियों के लिए वहाँ विद्यालयों की स्थापना की जाए । जम्मू कश्मीर रियासत द्वारा संघीय संवैधानिक व्यवस्था को स्वीकार कर लेने के बाद कुशोक बकुला ने अपने ये प्रयास तेज कर दिए । उन्होंने सरकार से बार–बार आग्रह किया कि लद्दाख में नए स्कूल खोलें जाएँ । लेकिन आम लोग इन स्कूलों में अपने बच्चों को भेजने के इच्छुक नहीं थे । वे अपनों बच्चों को गोम्पाओं में ही भेजना चाहते थे । लद्दाख के गाँव–गाँव में जाकर बकुला रिम्पोछे ने लोगों को प्रेरित किया कि वे अपने बच्चों को नई शिक्षा पद्धति के स्कूलों में पढ़ने के लिए भी भेजें । उन दिनों लद्दाख में सड़कें न के बराबर थीं । अत बकुला गाँव–गांव में टट्टू पर बैठ कर जाते थे । बकुला रिम्पोछे ने ही लद्दाख को टट्टू, पट्टू और सत्तू के युग से बाहर निकाल कर आधुनिक युग में पहुंचाया ।

दिल्ली में कश्मीरी गेट के नजदीक ही यमुना के किनारे, लदाख बौद्ध विहार की स्थापना उनके प्रयासों का ही नतीजा है । लद्दाख के बौद्ध तीर्थयात्री, देश में अन्य बौद्ध तीर्थों की यात्रा करते थे, तो उन्हें दिल्ली में ठहरने की बड़ी कठिनाई होती थी । बकुल रिम्पोछे के प्रयास से भारत सरकार ने यमुना के किनारे एक बौद्ध विहार के निर्माण के लिए एक भूखंड आवंटित किया । इसी स्थान पर लद्दाख बौद्ध विहार का निर्माण हुआ । यह विहार पूरे हिमालयी क्षेत्र के लोगों का दिल्ली में एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया है । 28 फरवरी 1963 को इस विहार के उद्‌घाटन अवसर पर दिया गया उनका उदबोधन दृष्टव्य है । उन्होंने कहा, ''दिल्ली में इस प्रकार के विहार को लेकर मेरा लम्बे समय से एक सपना था । मुझे खुशी है कि वह आज पूरा हो गया है । इस विहार को लेकर मेरे मन में शुरु से ही कुछ योजनाएँ हैं । मेरी इच्छा है कि इस विहार के अन्दर ऐसी व्यवस्था हो जहां लद्दाख के साधु संतों द्वारा विकसित ज्ञान परम्परा का अध्ययन किया जा

सके । लद्दाखी ज्ञान की यह परम्परा निश्चित ही हमारे साहित्य, दर्शन, संस्कृति और कला के विविध रूपों में परिलक्षित होती है । जिस अनश्वर संदेश पर यह साहित्य कला विकसित हुई है, उसके प्रचार-प्रसार का यह विहार केन्द्र बनना चाहिए । मेरा मकसद इस विहार से किसी पंथ, सम्प्रदाय या मजहब का प्रचार करना नहीं है । मेरा अभिप्राय तो मात्र इतना ही है कि विश्व के साहित्य, दर्शन और कला क्षेत्र में बुद्धमत का भी विशिष्ट स्थान है। मैं चाहता हूँ कि यह विहार आधुनिक आशाओं-आकांक्षाओं के सन्दर्भ में प्राचीन ज्ञान भंडार के अध्ययन का केन्द्र बने । मुझे प्रसन्नता है कि जिस ज्ञान परम्परा को हमने लद्दाख में शताब्दियों से सुरक्षित रखा है, वह परम्परा अब देश के सत्ता केन्द्र में पहुँच गई है ।'' (नवांग छेरिंग शकपो, कुशोक बकुला रिम्पोछे- सेंट एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 134) कुशोक बकुला ने अपने राष्ट्रवादी विचारों के आधार पर लद्दाख से लेकर अरुणाचल प्रदेश तक फैले समस्त हिमालयी क्षेत्र की आन्तरिक एकता के सूत्रों को सुदृढ़ करने के लिए अनेक उपक्रम प्रारंभ किये जिनमें विविध शैक्षिक संस्थाओं की स्थापना, हिमालय के लोगों के धर्म, जीवन-प्रणाली और भाषा पर शोध की परियोजनाएं तथा दिल्ली, वाराणसी, बोधगया आदि में बौद्ध मठों की स्थापना के अनेक प्रयास प्रारंभ किये । इसके अतिरिक्त अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ, ब्रिटेन, मंगोलिया एवं श्रीलंका सहित अनेक देशों में भारत की आध्यात्मिक जीवनदृष्टि को स्थापित करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है ।

भोटी भाषा को संविधान की भाषा अनुसूची में शामिल करवाने के प्रयास - भोटी भाषा केवल लद्दाख में ही नहीं बोली जाती बल्कि पूरे हिमालयी अंचल में बोली जाती है । कुशोक बकुला प्रयास कर रहे थे कि इस प्राचीन भाषा को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया जाए । उन्होंने यह मुद्दा लोक सभा में भी उठाया । उन्होंने कहा, ''इस भाषा को बोलने वालों की तादाद लगभग पाँच लाख है । यह

केवल भाषा ही नहीं है बल्कि इसमें बहुत सारी पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं । भारत में संस्कृत की जितनी मूल पांडुलिपियाँ थीं वे तिब्बत में ही थीं । लेकिन उनको चीन वालों ने नष्ट कर दिया है । उनका जो अनुवाद है वह भोट भाषा लद्दाख में है । इसलिए मेरा निवेदन है कि जिस भाषा के बोलने वाले नेफा से लद्दाख तक फैले हुए हैं और जिनकी तादाद करीब पाँच लाख है, उस भाषा को संविधान में स्वीकार किया जाना चाहिए ।'' (लोक सभा 25 जुलाई 1971) उन्हीं के प्रयासों का फल था कि अरुणाचल प्रदेश विधाान सभा ने भोटी भाषा को संविधान की अनुसूची में शामिल करने का प्रस्ताव पारित किया ।

पांचवा अधयाय

मंगोलिया व रूस में बौद्ध जागरण

मंगोलिया के साथ भारत के प्राचीन काल से सांस्कृतिक सम्बंध रहे है । आधुनिक काल में भी ये सम्बंध प्रगाढ होते रहे । जिन दिनों चीन पूरे मंगोलिया को निगलने का प्रयास कर रहा था और मंगोलिया अपनी रक्षा का प्रयास कर रहा था, उन्हीं दिनों उसने अपने इन प्रयासों में रूस के साम्यवादी शासन की सहायता ली । यद्यपि यह प्रयास आकाश से गिरकर खजूर में लटकने जैसा था लेकिन उन परिस्थितियों में शायद और कोई विकल्प नहीं था । इनर मंगोलिया चीन के पंजे में आ चुका था । आउटर मंगोलिया ने विद्रोह करके 1924 में ही वहाँ साम्यवादी सरकार स्थापित कर ली, इसलिए उसे रूस का समर्थन प्राप्त हो गया । इस प्रकार एशिया में कम्युनिस्ट होने वाला मंगोलिया पहला देश था । द्वितीय विश्व युद्ध के बाद उभरे सोवियत ब्लाक ने आउटर मंगोलिया को मान्यता देकर उसे चीन की गिद्ध दृष्टि से बचा लिया । सोवियत ब्लाक के बाहर भारत पहला देश था जिसने मंगोलिया जन गणतंत्र को राजनैतिक मान्यता दी और उसके साथ दौत्य सम्बंध स्थापित किए । उसके बाद मंगोलिया संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता के लिए प्रयास कर रहा था । लेकिन चीन इसका डट कर विरोध कर रहा था, क्योंकि चीन का कहना था कि पूरा मंगोलिया चीन का हिस्सा है । यहाँ तक कि मंगोलिया की सदस्यता का विरोध करने में दोनों चीन (माओ का चीन और च्यांग काई शेक का चीन) एकमत हो गए । लेकिन भारत ने उस समय मंगोलिया का डट कर समर्थन किया । कहा जा सकता है कि भारत मंगोलिया के हर सुख दुख में साथ रहा है । जिस प्रकार तिब्बत के लोगों का भारत में गहरा विश्वास है उसी प्रकार मंगोलिया के लोगों का भी भारत में गहरा विश्वास है ।

मंगोलिया के लोकसाहित्य में एक कथा शताब्दियों से प्रचलित है । इस लोक विश्वास का आधार उन्नीसवीं शताब्दी के शुरु में ही मंगोलिया के आठवें जेब छुंदम्बा अथवा बोद गेगीन की एक भविष्यवाणी है । इसके अनुसार एक समय ऐसा आएगा जब मंगोलिया में बौद्ध बचनों पर संकट आ जाएगा । विहार में जाने वाले भक्तों को शासक दल के लोग प्रताड़ित करेंगे। बौद्ध विहारों को गिरा दिया जाएगा । त्रिपिटकों को जला दिया जाएगा । मंगोलिया में किसी भिक्षु के दर्शन करना कठिन हो जाएगा । लेकिन निराशा का यह कठिन कालखंड ज्यादा देर नहीं रहेगा । फिर एक दिन भारत से अर्हत बकुला के अवतार मंगोलिया में आएँगे और यहाँ पुनः बौद्ध बचनों का प्रसार होगा । महान् मंगोलियाई भिक्षु विद्वान जावा दम्दीन ने अर्हत बकुल के मंगोलिया में आने की आशा में उनकी स्तुति में एक काव्य रचना की, जिसे मंगोलिया में साम्यवादी शासन से पूर्व देश के सभी बौद्ध-विहारों में पढ़ा जाता था । बौद्ध जगत में सोलह अर्हत वाले थंका बहुल प्रचलित हैं । इन थंकाओं में केन्द्र में भगवान बुद्ध होते हैं और उनके इर्द गिर्द सोलह अर्हत दिखाए जाते हैं । लेकिन आठवें बोद गेगीन की भविष्यवाणी के बाद मंगोलिया में इन थंकाओं का क्रम बदल गया । मंगोलिया में इन थंकाओं में सबसे ऊपर भगवान बुद्ध विराजमान होते हैं और उनके नीचे सोलह अर्हत चित्रित होते हैं । इन सोलह अर्हतों में से बकुला केन्द्र में होते हैं और शेष पन्द्रह अर्हत उनके चारों ओर चित्रित होते हैं । लेकिन ये सब बातें मंगोलिया में कम्युनिस्ट शासन स्थापित होने से पहले की हैं । लेकिन उसके बाद भी ये थंका बहुत से लोगों के घरों में चोरी छिपे सुरक्षित रहे । आज भी ये पुराने थंका कुछ घरों में देखे जा सकते हैं ।

मंगोलिया में जब साम्यवादी शासन शुरु हुआ तो लोगों को इस लोककथा में सत्यता का आभास होने लगा । मंगोलिया में साम्यवादी शासन के दिनों में सरकार ने पूरी तरह कोशिश की थी कि मंगोलिया से बौद्ध बचनों के प्रभाव को समाप्त कर दिया जाए । वहाँ बौद्ध विहारों पर एक

प्रकार से प्रतिबन्ध ही लगा हुआ था । देश ने अपने–आप को निरीश्वरवादी घोषित किया हुआ था । 1924 से ही देश पर मंगोलिया जन क्रान्तिकारी दल का एकाधिकारवादी शासन था और वह सोवियत रूस का पिछलग्गू बना हुआ था । कम्युनिस्टों ने बौद्ध धर्म ग्रन्थों को जला दिया था । मंगोलियां में तीन सौ से भी ज्यादा मठ थे और वहाँ की एक तिहाई जनसंख्या मठों में भिक्षु थी । साम्यवादी शासन ने बौद्ध मठों को गिरा कर भिक्षुकों को वहाँ से निष्कासित कर दिया था । हजारों चीवरधारी भिक्षुकों की गोली मारकर हत्या कर दी गई । शासन ने भिक्षु संघों को प्रतिबन्धित कर दिया । बौद्ध दर्शन व साहित्य के अध्ययन और साधना को लगभग समाप्त कर दिया । लेकिन मंगोलिया के लोगों के हृदय के भीतर घर किए गए बौद्ध बचनों को मिटाना क्या इतना आसान था? कुशोक बकुला की दृष्टि सदा मंगोलिया में हो रहे बौद्ध बचनों के इस संहार की ओर ही लगी रहती थी क्योंकि तिब्बत में वे यह सब कुछ प्रत्यक्ष देख चुके थे । उन्होंने टिप्पणी भी की थी,'' बुद्ध बचनों के प्रचारक पश्चिम की ओर जा रहे हैं क्योंकि वहाँ जाना आसान भी है और सुविधापूर्ण भी। लेकिन जहां सचमुच बौद्ध बचन संकट में हैं, उधार का रुख कौन करता है? क्योंकि वहाँ किसी प्रकार की सुविधा नहीं है । सन 1970 ई. में कुशोक बकुला मंगोलिया की यात्रा पर गए । इससे पहले वे 1968 में साम्यवादी रूस की यात्र कर आए थे । वहाँ उन्होंने बुरयात बौद्धों की दुर्दशा देखी थी । अब मंगोलिया में बौद्ध समाज का उत्पीड़न उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा । यहाँ भी वे बौद्ध मठों के भग्नावशेषों को देख रहे थे । पद्दलित चीवर, साम्यवादियों के अत्याचारों की साक्षी दे रहे थे । मंगोलिया में उन परिस्थितियों में कुशोक बकुला का आगमन साम्यवाद की तप्त हवाओं में ठंडी हवा का एक झोंका था । बुद्धम् शरणम् गच्छामि की एक मध्म धवनि। मंगोलिया के लोगों ने इसे स्पष्ट सुना । शायद कुशोक बकुला मंगोलिया के लोगों को अपने भविष्य में आने के प्रति आश्वस्त कर रहे थे । दो दशक बाद सचमुच वही घटित होने लगा जिसकी

किसी ने कल्पना भी नहीं की थी । बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक विश्व इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण दशक बन गया ।

भारत सरकार ने 1990 में कुशोक बकुला को मंगोलिया में भारत के राजदूत बना कर उलान बातोर भेजा । चार जनवरी को प्रचलित परम्परा के अनुसार कुशोक बकुला ने मंगोलियाई संसद के सभापति श्री बातमुंख को राजदूत के नाते अपना आधिकारिक नियुक्ति पत्र प्रस्तुत किया और कहा शताब्दियों पहले भगवान बुध मंगोलिया में भारत के पहले राजदूत थे उस भिक्खु परम्परा का मैं दूसरा राजदूत हूँ । बातमुंख एकबारगी तो स्तब्ध रह गए । उन दिनों मंगोलिया में महात्मा बुद्ध की बात करना भी गुनाह था और यहाँ भारत का राजदूत चीवरधारी भिक्खु स्वयं को उसी परम्परा का वाहक बता रहा था । लेकिन भविष्य में क्या लिखा हुआ है, इसे कौन जान सकता है ?

आगे आने वाला समय भारी उथल-पुथल का समय था । सोवियत संघ में दरारें पड़नी शुरु हो गई । लोकतंत्र की आवाजें उठने लगीं । देखते-देखते मध्य एशिया के वे सब देश जो अब तक रूस की छाया में सिकुड़े हुए थे, आकार ग्रहण करने लगे । शायद मंगोलिया के लिए भी वह कालखंड आ गया था जिसकी प्रतीक्षा वहाँ के लोग शताब्दियों से कर रहे थे। भारत से कुशोक बकुला के आने की प्रतीक्षा। यह काल मंगोलिया के इतिहास का संक्रमण काल था । वहाँ की साम्यवादी सरकार के खिलाफ युवा पीढ़ी का विद्रोह शुरु हो चुका था । उलान बातोर का सुखबतार चौक लोकतांत्रिक प्रदर्शनकारियों का केन्द्र बन गया था। यह सत्तर साल के साम्यवादी शासन के अन्त की पूर्वपीठिका थी । 9 मार्च 1990 आते-आते सुखबतार चौक पर प्रदर्शनकारियों की संख्या बेतहाशा बढ़ रही थी । साम्यवादी शासक दल के सशस्त्र बल भी सन्नद्ध थे । दोनों पक्ष आमने-सामने थे । किसी समय भी हिंसा भड़क सकती थी । नरसंहार हो

सकता था । एक साल पहले ही बीजिंग के तियानमेन चौक पर चीन की साम्यवादी सरकार द्वारा अपने ही प्रदर्शनकारियों का किया गया नरसंहार लोगों की स्मृति से अभी ओझल नहीं हुआ था । उसकी पुनरावृत्ति यहाँ भी हो सकती थी । दोनों पक्ष आमने-सामने डटे थे । कौन उनको संवाद की स्थिति में ला सकता था ? प्रदर्शनकारियों के कुछ प्रमुख लोग भारतीय दूतावास में कुशोक बकुला से मिलने के लिए आए । किसी विदेशी राजदूत से सरकार विरोधी पक्ष का उस प्रकार के उत्तेजित वातावरण में मिलना कितने ही भ्रम पैदा कर सकता था । लेकिन मंगोलिया के लोगों के लिए, चाहे वे सरकारी पक्ष के हों या फिर विरोधाी पक्ष के, भारत विदेश था ही कहाँ ? भगवान बुद्ध की भूमि मंगोलिया के लिए विदेश कैसे हो सकती थी ? कुशोक बकुला ने उनको किसी भी स्थिति में अहिंसा का रास्ता ही अपनाने के लिए कहा । उन्होंने उन्हें महात्मा गान्धी का स्मरण करवाया । उन्होंने उनकी कलाई पर मौली का अभिमंत्रित धागा बाँधा । कुछ और अभिमंत्रित धागे उन्हें दिए । कुछ देर के बाद ही सुखबतार के प्रदर्शनकारी, वे अभिमंत्रित धागे अपनी-अपनी कलाई पर बाँध रहे थे । उधर साम्यवादी पार्टी की पोलितब्यूरो की बैठक शुरु हो चुकी थी । महासचिव बातमुंख को हस्ताक्षर करने के लिए एक अध्यादेश दिया गया जिसमें देश में मार्शल कानून लागू करने और प्रदर्शनकारियों को नजरबन्द करने का आदेश था । सरकारी टैंक एक्शन लेने के लिए तैयार थे । सेना सन्नद्ध थी । लेकिन महासचिव ने हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया । उसने कहा, ''मैं इस पर कभी हस्ताक्षर नहीं करूँगा । हम मंगोल संख्या में पहले ही बहुत कम हैं और अभी वह मुकाम नहीं आया है जहाँ हम आपस में ही एक दूसरे को लहूलुहान कर दें ।'' सरकार ने प्रदर्शनकारियों पर गोली न चलाने का निर्णय किया । संवाद का रास्ता खुला और इस संवाद ने बिना एक भी गोली चलाए देश का इतिहास बदल दिया । मंगोलिया में साम्यवादी शासन के अन्त की शुरुआत हो गई । उस कालखंड में जितने देश

साम्यवादी शिकंजे से मुक्त हुए, उन सभी में हिंसा के चलते रक्तपात हुआ । लेकिन मंगोलिया ही एकमात्र ऐसा देश था जहाँ बिना रक्त की एक बूँद भी बहाए सत्ता परिवर्तन हो गया । यह रहस्य आज तक बना हुआ है कि महासचिव ने ऐसा क्यों किया । कुछ लोगों का मानना है कि यह कुशोक बकुला के प्रभाव के कारण ही हुआ था । मंगोलिया में शासन का स्वरूप बदला । साम्यवादी शासन पद्धति के स्थान पर लोकतांत्रिक शासन पद्धति की स्थापना हुई । 1992 में श्री पी ओचिरबात राष्ट्रपति के पद पर निर्वाचित हुए और 1994 में भारत में आए । दोनों देशों में परस्पर सहयोग और मित्रता को लेकर ऐतिहासिक संधि हुई, जिसे राष्ट्रपति ने स्वयं दोनों देशों के द्विपक्षीय सम्बंधों में unprecedented and a landmark agreement कहा । इसमें बकुला रिम्पोछे की भूमिका की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था, ‘‘रिम्पोछे ने मंगोलिया के इतिहास में भी अपने लिए स्थान बनाया । उन्होंने मंगोलिया की विरासत के अभिन्न अंग बौद्ध मत की glory की पुनर्स्थापना हेतु मंगोलिया की राष्ट्रीय संस्कृति के विकास के ऐतिहासिक महत्व को पहचाना । इस संधि के सम्पन्न होने में रिम्पोछे के व्यक्तिगत प्रयासों की भूमिका अविस्मरणीय है। "(Buddhists: Understanding Buddhism Through the Lives of Practitioners edited by Todd Lewis page 224)

कुशोक बकुला की नियुक्ति दो साल के लिए की गई थी लेकिन एक बार वे वहाँ जाकर रम गए तो दस साल तक वहीं भारत के राजदूत बन कर रहे । मंगोलिया में बुद्ध बचनों और विहारों को पुनर्जीवित करने में उनका सर्वाधिक योगदान रहा । साम्यवादियों द्वारा किए गए मंगोलिया के इस सांस्कृतिक विनाश को देख कर वे बहुत दुखी थे । वे मंगोलिया को पुनः उसके सांस्कृतिक उत्स से जोड़ने में सक्रिय हो गए । उन्होंने मंगोलिया में आते ही घोषणा कर दी थी कि मंगोलिया में भारत के सबसे पहले राजदूत तो भगवान बुद्ध ही थे । उनका आशय स्पष्ट था कि वे बुद्ध की उसी परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए आए हैं । मंगोलिया के लोगों को भी उनका

यह संदेश समझने में देर नहीं लगी, क्योंकि वे तो सहस्रों साल से बकुला के आने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे । उनके आने मात्र से सत्तर साल का साम्यवादी प्रभाव उसी प्रकार उड़ गया जिस प्रकार तेज हवा चलने से बादलों का झुंड गायब हो जाता है । कुशोक बकुला समझ गए थे कि भिक्खुओं की नई पीढ़ी को प्रशिक्षित करने में अब अनेकों वर्ष लग जाएँगे । लेकिन एक बार दलाई लामा के आ जाने से मंगोलिया में पुनः धर्म के प्रति जन ज्वार उमड़ेगा । युवा पीढ़ी पुनः महाविहारों की ओर आकर्षित होगी और मंगोलिया अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर लेगा, ऐसा उनका विश्वास था । पहले भी 1979 और 1982 में दलाई लामा मंगोलिया में आ चुके थे लेकिन उस समय देश में साम्यवादी शासन था । अब देश में लोकतांत्रिक प्रक्रिया शुरु हो चुकी थी । इस नए माहौल में 1991 में दलाई लामा धर्मशाला से मंगोलिया पहुँचे । लगभग सत्तर साल बाद एक बार फिर मंगोलिया में भगवान बुद्ध की जयन्ती मनाई गई । इस अवसर पर कुशोक बकुला ने अवलोकितेश्वर के मंत्रों का पाठ किया । 1992 में कुशोक बकुला के प्रयासों से मंगोलिया बौद्ध परिषद की स्थापना हुई । कुशोक बकुला ने अनुभव किया कि यदि भगवान बुद्ध के कुछ अवशेष मंगोलिया में लोगों के दर्शन के लिए रखे जाएँगे तो लोगों में सुप्त चेतना पुनः जागृत हो जाएगी । उन्होंने भारत सरकार से आग्रह किया कि बुद्ध के कुछ अवशेषों को मंगोलिया में सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए रखा जाए । भारत सरकार ने उनके इस आग्रह को स्वीकार किया और पहली बार 1993 में बुद्ध के अवशेष मंगोलिया में प्रदर्शित किए गए । इससे उमड़े जन ज्वार का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि सुदूर पठारों में भेड़ बकरियाँ चराने वाले चरवाहों से लेकर देश के राष्ट्रपति तक एक ही पंक्ति में दर्शन के लिए खड़े थे । 1994 में कुशोक बकुला के प्रयासों से मंगोलिया में कालचक्र दीक्षा का आयोजन किया गया । इस अवसर पर प्रवचन के लिए एक बार पुनः धर्मशाला से दलाईलामा को आमंत्रित किया गया । मंगोलिया में बहुत लम्बे

अरसे के बाद काल चक्र दीक्षा का आयोजन हुआ था । ऊपर से दलाई लामा उसमें आ रहे थे । यह मणिकांचन संयोग ही था । उसके बाद 1995 में वे फिर मंगोलिया गए । कुशोक बकुला जानते थे कि मंगोलिया में दलाई लामा का हर प्रयास वहाँ बौद्ध बचनों को पुनः जागृत करता है ।

कुशोक बकुला स्वयं बौद्ध समाज में गेलुग्पा सम्प्रदाय के थे लेकिन उनका प्रयास था कि मंगोलिया के बौद्ध समाज में एकता और समरसता के लिए अन्य सम्प्रदायों के विद्वानों को भी बुलाया जाना चाहिए । इसी कारण से उन्होंने 1995 में शाक्य सम्प्रदाय के ठिपोन रिंपोछे को मंगोलिया आमंत्रित किया । रिंपोछे ने अनेक लोगों को धम्म शिक्षा दी और उन्हें भिक्खुसंघ में दीक्षित भी किया । कुशोक बकुला मंगोलिया में दस साल तक रहे । सैकड़ों बन्द हो चुके गोम्पाओं को उन्होंने पुनः खुलवाया । अनेकों बौद्ध शान्ति सम्मेलनों का आयोजन किया । उनके प्रयासों से उलानबतार में बौद्ध अध्ययन के लिए एक महाविद्यालय की स्थापना की गई । महाविद्यालय के लिए भारत से बौद्ध ग्रन्थ मँगवाए गए । मंगोलिया में जो युवा भिक्खुसंघ में दीक्षित हुए उन्हें उच्च अध्ययन के लिए बकुला ने धर्मशाला और सारनाथ भिजवाया । भारत से बौद्ध विद्वानों को मंगोलिया बुलाया गया । कुशोक बकुला ने बदली परिस्थितियों में सारे देश में बुद्ध बचनों का उपदेश देते हुए यात्रा की । कुशोक बकुला के प्रति मंगोलिया के लोगों की श्रद्धा इतनी थी कि पुराने बुजुर्ग भिक्षु धरती पर लेटकर उन्हें साष्टांग प्रणाम करते दिखाई देते थे । युवा लड़के केवल उनके हस्ताक्षर और आशीर्वाद लेने के लिए पंक्तियों में खड़े रहते थे । कुशोक बकुला उनकी कलाई में मौली बाँध कर आशीर्वाद देते थे । सत्तर साल में नष्ट हो चुकी बौद्ध परम्पराओं को पुनः जीवित करने का महत्वपूर्ण कार्य करने में कुशोक बकुला की भूमिका सचमुच ऐतिहासिक ही मानी जाएगी । मंगोलिया और रुस में बौद्ध मत को पुनर्जीवित करने और उनका भारत के निर्वासित तिब्बती समुदाय से सम्पर्क स्थापित करवाने में उन्होंने महत्वपूर्ण

भूमिका अदा की । उन्होंने मंगोलिया में अनेक युवाओं को बौद्ध भिक्षु के रूप में दीक्षा दी । बकुला ने 1999 में उलान बतार में The Bakula Rinpoche Süm की स्थापना की । उलान बातोर में नष्टप्राय हो चुके पेथुप गोन्पा को पुनः स्थापित करने और उसे बौद्ध क्रिया-कलापों का केन्द्र बनाने में बकुला ने दिन-रात एक कर दिया । कालान्तर में कुशोक बकुला का यह पारम्परिक मठ बौद्ध शिक्षा का एक बड़ा केन्द्र बना ।

कुशोक बकुला रिम्पोछे प्रथम भिक्षु थे जिन्होंने पांथिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगे देशों जैसे पूर्व सोवियत संघ, मंगोलिया और चीन में जाकर लोगों को धार्मोपदेश दिया । उनका ध्यान हमेशा उन देशों में बौद्ध परम्परा को पुनर्जीवित करने और प्रोत्साहित करने पर केन्द्रित रहता था क्योंकि उन देशों की राजनीतिक प्रणाली ने अपने लोगों को इससे वंचित रखा था । यह रिम्पोछे की अद्‌भुत योग्यता थी कि वे कठोर शासन प्रणाली वाले उन देशों के लोगों के साथ आसानी से अपना आध्यात्मिक संबंध बना लेते थे।

कुशोक बकुला रिम्पोछे प्रथम भिक्षु थे जिन्होंने पांथिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगे पूर्व सोवियत संघ में जाकर लोगों को धर्मोपदेश दिया। इसका भी एक रुचिकर इतिहास है । बीसवीं शताब्दी में पश्चिमी देशों, विशेषकर यूरोप और अमेरिका महाद्वीप में भगवान बुद्ध के बचनों को लेकर खासा उत्साह दिखाई देने लगा था । उससे पहले बुद्ध बचनों का प्रचार प्रसार एशिया के देशों में ही था । एशिया के अनेक देशों में भी इस्लाम की आँधी ने उसे ग्रस्त कर लिया था । पूरा मध्य एशिया, जहाँ पहले बुद्धम् शरणम् गच्छामि के स्वर गूँजते थे, वहाँ इस्लाम का परचम फहराने लगा और बौद्ध विहारों का विध्वंस हुआ । चीन द्वारा तिब्बत पर कब्जा कर लेने के बाद पश्चिमी देशों का ध्यान तिब्बत के भूगोल की ओर तो गया ही, साथ ही वहाँ के सांस्कृतिक परिवेश की ओर भी गया जो बुद्ध बचनों से रचा बसा था । अनेक तिब्बती भिक्षु भी पश्चिमी देशों में जाकर रहने लगे और उन्होंने वहाँ

विहारों की स्थापना कर ली । उनके नाम और काम दोनों को ही प्रसिद्धि मिलने लगी । ऐसे समय कुशोक बकुला रिम्पोछे को भी पश्चिमी देशों में जाकर बुद्ध बचनों का प्रचार प्रसार करने का निमंत्रण मिला । एक विद्वान और साधक के नाते उनकी ख्याति तो फैल ही चुकी थी । लेकिन रिम्पोछे ने पश्चिमी देशों में जाने का विकल्प नहीं चुना । इसका एक कारण भारत में उनकी व्यस्तताएँ थीं लेकिन एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण भी था । बकुला रिम्पोछे के शब्दों में ही, ''मेरी पश्चिमी देशों में इस काम के लिए जाने की इच्छा भी नहीं थी । उसका कारण पश्चिमी देशों के लोगों को तंत्रयान की सही समझ नहीं है । तंत्र की अनेक गुह्य क्रियाएँ रहस्यमयी भी हैं । पश्चिमी साधक यद्यपि इस मामले में गहरे विश्वासी माने जा सकते हैं लेकिन तांत्रिक शिक्षा को लेकर उनकी मूल अवधारणा ही अलग है।

वे इस साधना के निर्धारित सोपानों का पालन नहीं करते । इसलिए मैंने पूर्व के उन देशों पर स्वयं को केन्द्रित किया जहाँ बौद्धमत का क्षय हो रहा था । मैं उन लोगों की दशा देखकर व्यथित होता था, जिनको दंड विधान से अपनी आस्था का पालन करने के अधिकार से बंचित कर दिया गया था । इसलिए मेरी इच्छा रहती थी कि मुझे ऐसे देशों में बुद्ध बचनों की पुनर्स्थापना और धर्म कार्य करने का अवसर मिले । "(my life my times 42) उनका ध्यान हमेशा उन देशों में बौद्ध परम्परा को पुनर्जीवित करने और प्रोत्साहित करने पर केन्द्रित रहता था क्योंकि उन देशों की राजनीतिक प्रणाली ने अपने लोगों को इससे वंचित रखा था। यह रिम्पोछे की अद्भुत योग्यता थी कि वे कठोर शासन प्रणाली वाले उने देशों के लोगों के साथ आसानी से अपना आध्यात्मिक संबंध बना लेते थे।

लोकसभा के सदस्य चुने जाने के बाद जब उन्हें यह अवसर प्राप्त हुआ तो उन्होंने सबसे पहला रुख उन देशों की ओर ही किया, जहाँ धर्म का क्षय हो रहा था । जाहिर है रूस का नाम इसमें नम्बर एक पर ही था ।

सोवियत रूस में दो गणतन्त्रों में बौद्धमत को मानने वाले लोगों की जनसंख्या पर्याप्त थी । इनमें से पहला बुरयात आटोनोमस सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक था । सायबेरिया स्थित इस गणतन्त्र में बौद्धमत को मानने वालों की जनसंख्या बीस प्रतिशत के लगभग थी । (सोवियत संघ के विघटन के बाद 1992 में इस गणतंत्र ने अपना नाम बुरियातिया गणतंत्र कर लिया लेकिन रूसी परिसंघ में ही बना रहा ।) दूसरा स्वायत्त गणतंत्र कलमयाक आटोनोमस सोवियत सोशलिस्ट रिपब्लिक था । यह गणतंत्र सोवियत रूस के यूरोपीय क्षेत्र में स्थित है । सोवियत संघ के विघटन के बाद इस गणतंत्र ने अपना नाम कलमयाक गणतंत्र कर लिया लेकिन रूसी परिसंघ का सदस्य बना हुआ है । इस गणतंत्र में लगभग 37 प्रतिशत संख्या बौद्धमत को मानने वालों की है । कलमयाक के बौद्धों ने स्टालिन के युग में भीषण अत्याचार सहे थे । यह कुछ कुछ ऐसा ही था जैसे मुगल वंश के औरंगजेब के राज्यकाल में भारतीयों के साथ हुआ था । रूस के इन हिस्सों में बुद्ध बचनों का प्रसार तिब्बत और मंगोलिया के बौद्ध साधकों ने अठारहवीं शताब्दी में किया था । रूस में 1917 में साम्यवादी क्रान्ति हुई थी। साम्यवादी शासन ने रिलीजन या मजहब को अफीम घोषित कर दिया और व्यवहारिक रूप से सभी सम्प्रदायों या रिलीजनों को प्रतिबन्धित कर दिया । इसमें बुद्धमत भी था ।

कुशोक बकुला जुलाई 1968 में वे पहली बार रूस गए । बुरयात में उन्हें खाम्बोलामा जामपेल दोर्जी गोमबोएव ने निमंत्रित किया था। 1917 में सोवियत रूस की सत्ता साम्यवादी पार्टी द्वारा संभाल लेने के बाद, कुशोक बकुला रिम्पोछे, रूस में जाने वाले पहले बुद्ध भिक्षु थे । बुरयात की राजधानी उलान उदे के इवोलगिंस्की मठ में उनका भव्य स्वागत हुआ । वैसे भी पूरे बुरयात क्षेत्र में यही एकमात्र मठ बचा था, जहाँ पूजा पाठ होता था । अन्य मठों को साम्यवादी शासकों ने नष्ट कर दिया था । बकुला रिम्पोछे के शब्दों में ही, ''हजारों पुरुष स्त्रियाँ नीले रंग के खतक लेकर स्वागत के लिए

खड़े थे । भिक्षु परम्परा गत ढंग से स्वागत छाता बौद्ध धवज और पताकाएँ लेकर मेरे स्वागत के लिए खड़े थे । वे शंख ध्वनि कर रहे थे । अगरबत्ती जला रहे थे । ढोल मंजीरे, सींग की तुरही बजा रहे थे । बुरयात परम्परा के अनुसार नमक–रोटी के साथ दही भरे चान्दी पात्र के साथ मेरा स्वागत किया। ---------- मैंने वहाँ काल चक्र पूजा की । मैं सुदूर सायबेरिया में वहाँ के अनजान श्रद्धालुओं के बीच एकात्म भाव का अनुभव कर रहा था।'' (my life my times 43 & 44) जिस समय कुशोक बकुला रिम्पोछे सोवियत रूस के बुरयात में बौद्ध मताबलम्बियों में बिचर रहे थे उस समय वहाँ मंगोलिया के खाम्बोलामा भी थे । उन्होंने ही मंगोलिया में बौद्धमत की दयनीय स्थिति के बारे में बताया । बुरयात के खाम्बोलामा भी रूस में बुद्धमत पर लगे हजारों प्रतिबन्धों से चिन्तित थे । दोनों की इच्छा थी कि इन विपरीत परिस्थितियों में भी बौद्धमत के उद्धार का रास्ता निकाला जाए । कुशोक बकुला रिम्पोछे ही यह काम कर सकते थे । एक तो वे टुलकु थे, दूसरे वे पश्चिमी जगत में जाने के आकर्षण त्याग कर एशिया में काम करना चाहते थे । लेकिन एक प्रश्न अभी भी अनुत्तरित था कि मंगोलिया और सोवियत रूस की सरकारों ने अपने खाम्बालामाओं को बुरयात में एकत्रित होकर एक भारतीय लामा से मंत्रणा करने की अनुमति कैसे दे दी ? दूसरा प्रश्न इससे भी बड़ा था । आखिर कुशोक बकुला रिम्पोछे को उलान उदे में बौद्धमत पर चर्चा करने की अनुमति कैसे दे दी ? इसका रहस्य भी बकुला रिम्पोछे को पता था । उनके अपने विश्लेषण के अनुसार, ''सोवियत रूस और मंगोलिया दोनों ही एक अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध परिषद स्थापित करने के इच्छुक थे जिसका मुख्यालय मंगोलिया में स्थापित किया जाना था । इस परिषद के माध्यम से अन्य देशों के बौद्धों से सम्पर्क स्थापित किया जाना था। इस उद्देष्य की पूर्ति के लिए सोवियत व मंगोलिया ने अपने खाम्बालामाओं को योजनापूर्वक स्वीकृति दी हुई थी ।'' मामला साफ था । सोवियत रूस अपने यहाँ के बौद्धों को आगे करके एशिया के बौद्ध देशों में

अपना प्रभाव निर्माण करना चाहता था । इस उद्देष्य की पूर्ति के लिए, कुशोक बकुला रिम्पोछे के ही शब्दों में, ''शान्ति हेतु एशिया बौद्ध परिषद का गठन 1970 में किया गया । अंग्रेजी में एशियन बुद्धिस्ट कान्फ्रेंस फार पीस यानि एबीसीपी । एबीसीपी ने 1979 में दलाई लामा को सोवियत रूस और मंगोलिया में आमंत्रित किया । --------- सोवियत रूस व मंगोलिया की सरकारों ने अपने संविधान में पांथिक स्वतंत्रता का सैद्धान्तिक तौर पर तो प्रावधान किया हुआ था । लेकिन व्यवहार में वहाँ कोई मजहबी स्वतंत्रता नहीं थी । मात्र दिखावे के लिए कुछ मंदिर खोलने की अनुमति दी गई । 1970 में हेलसिंकी समझौते के कारण सोवियत रूस और उसके प्रभामंडल के दूसरे साम्यवादी देश अपने यहाँ नाममात्र की पांथिक स्वतंत्रता देने के लिए तैयार हुए । इसके बाद ही मंगोलिया ने गांदेन मठ को कार्य करने की अनुमति दी गई थी । सोवियत संघ ने इवोलगिंस्की मठ को यही अनुमति दी । यद्यपि ये मठ भी सरकार द्वारा नियुक्त भिक्षुओं से भरे हुए थे और सरकार के सख्त नियंत्रण में ही कार्य करते थे । इसके बावजूद मैं सोचता हूँ कि इन सरकारों की यह प्रतीकात्मक ढील भी इन देशों के बौद्ध मताबलम्बियों को अपनी विरासत से जोड़ने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई, अन्यथा इन देशों में बौद्ध मत पूरी तरह समाप्त हो गया होता ।'' (my life my times 45) सोवियत रूस अपने यहाँ के बौद्धों का उपयोग अपने साम्राज्यवादी राजनैतिक हितों के लिए करना चाहता था और कुशोक बकुला उसके इसी छिद्र का लाभ उठाकर वहाँ मृतप्रायः हो चुके बौद्ध समाज को पुनः संजीवनी प्रदान करने के लिए करना चाहते थे । उनके अपने ही शब्दों में, ''उनके लिए चाहे इसके राजनैतिक अर्थ हों परन्तु हमारी प्राथमिकता तो इसी का लाभ उठाकर उस क्षेत्र में बौद्धमत की पुनर्स्थापना ही था।'' (my life my times 45)

सोवियत रूस में पहले पहल कुशोक बकुला रिम्पोछे के पास आने से बुद्ध मत को मानने वाले उपासक आने से डरते थे । आने वालों में से कई

बार सरकारी गुप्तचर भी होते थे । कई बार एक श्रद्धालु अन्दर रिम्पोछे के बचन सुनता था और दूसरा दरवाजे पर रह कर बाहर नजर रखता था । बाद में तो साम्यवादी पार्टी के कुछ पदाधिकारी भी रिम्पोछे से उपदेश लेने के लिए आने लगे थे । 1968 के बाद वे सोवियत रूस में अनेक बार गए । 1989 में पहली बार कलमाईकिया गए । वहाँ के बौद्धों में उस समय का उत्साह देखते ही बनता था । बकुला रिम्पोछे का रूस में सबसे बड़ा काम सेंट पीटर्सवर्ग में पुराने बौद्ध मठ का पुनरुद्धार करना था । अठारहवीं शताब्दी में यह मठ मंगोलिया के एक बौद्ध साधक अवांग लोबजंग दोरजेव ने बनाया था । दोरजेव तेरहवें दलाई लामा का शिक्षक भी रह चुका था । दोरजेव का प्रयास था कि पीटर्सवर्ग का यह मठ तिब्बत के दलाईलामा का रूस में दूतावास बनेगा । (यह अलग बात है कि ग्रेट गेम के दिनों में दोरजेव के इन्हीं प्रयासों के कारण ब्रिटेन को शक हुआ कि रूस तिब्बत पर नजर गढ़ाए हुए है । जिसके कारण उसने तिब्बत पर चीन के अधिकार को मान्यता दे दी) लेकिन रूस की साम्यवादी क्रान्ति के बाद इस मठ का जो हश्र हो सकता था, वही हुआ । रिम्पोछे के प्रयासों से 1988 में यह बौद्ध मंदिर वहाँ के बौद्ध समाज के हवाले कर दिया गया । यह रिम्पोछे के लिए बहुत बड़ी सन्तुष्टि थी ।

छठा अध्याय

तिब्बत के सरोकार

कुशोक बकुला की तिब्बत यात्रा – कुशोक बकुला ने अपना अध्ययन तिब्बत से किया था लेकिन अब तिब्बत के हालात दिन–प्रतिदिन बदल रहे थे । तिब्बत को चीन की लाल छाया ग्रस रही थी । वहाँ बौद्ध बचनों पर संकट उपस्थित हो गया था । चीन तिब्बत को अपना गुलाम बना रहा था । वे इस पक्ष में थे कि भारत के उत्तरी सीमान्त की सुरक्षा के लिए तिब्बत का स्वतंत्र देश बने रहना बहुत जरुरी है । तिब्बत भारत व चीन के बीच एक बफर स्टेट का काम करता है । उसके मिट जाने से भारत पर चीन का खतरा बढ़ जाएगा । अपनी यह चिन्ता उन्हेंने पंडित जवाहरलाल नेहरु से भी व्यक्त की । कुशोक बकुला सन् 1954 ई. में खंग रिंपोछे यानि कैलाश–मानसरोवर की तीर्थ–यात्र पर गये । कैलाश–मानसरोवर की तीर्थ यात्र प्राचीन काल से ही प्रचलित है । उन्होंने वहाँ चीन का साया प्रत्यक्ष अनुभव किया । वापिस लौट कर वे उसी वर्ष आयोजित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय वैश्विक बौद्ध सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल को लेकर यंगून (म्यांमार) गए । उन्हीं दिनों भारत सरकार ने 1956 में भगवान बुद्ध की पच्चीस सौवीं जयन्ती बड़े स्तर पर मनाने का निश्चय किया । इस हेतु तत्कालीन उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में समिति का गठन किया गया, उसमें कुशोक बकुला भी सदस्य बनाए गए । इस अवसर पर तिब्बत के दलाई लामा और पंचेन लामा को निमंत्रित करने के लिए सरकार ने एक प्रतिनिधिमंडल तिब्बत भेजा । कुशोक बकुला इस प्रतिनिधिमंडल के अध्यक्ष थे । यह प्रतिनिधिमंडल 18 नबम्वर 1955 को जम्मू से चला और सिक्किम होता हुआ ल्हासा पहुँचा और 19 मार्च 1956 को तिब्बत से

वापिस चल पडा । कुशोक बकुला ने तो तिब्बत में चौदह साल रहकर ही अपनी पढ़ाई पूरी की थी । इसलिए तिब्बत उनके लिए कोई नया प्रदेश नहीं था । लेकिन तब के तिब्बत (1927–1940) और आज के तिब्बत में जमीन–आसमान का फर्क आ चुका था । उस समय तिब्बत आजाद देश था और चीन पर भी तब तक माओ का कब्जा नहीं हुआ था । लेकिन अब डेढ़ दशक बाद सब कुछ बदल गया था । चीन साम्यवादी चोला ओढ़ चुका था और उसने तिब्बत पर कब्जा कर लिया था । उसकी सेना ल्हासा में पहुँची हुई थी । चीन वहाँ से बौद्ध मत को समाप्त करने का प्रयास तो कर ही रहा था, इसके साथ ही तिब्बत की भाषा और संस्कृति को भी समाप्त करने में लगा था । किसी साम्यवादी शासन व्यवस्था में स्थानीय धर्म, संस्कृति और आस्था–परम्पराओं की क्या दुर्गति हो सकती है, इसका व्यावहारिक रूप कुशोक बकुला ने पहली बार तिब्बत में ही देखा । वे लगभग दो महीने ल्हासा में रहे । उन्होंने वहाँ अनेक लोगों से मुलाकात की और तिब्बत में उभर रही नई राजनैतिक व्यवस्था को समझा और तिब्बतियों के भीतर की बेचैनी को भी देखा । तिब्बत के चौदहवें दलाई लामा पर आने वाले संकट को भी वे स्पष्ट देख पाए । वे समझ गए थे कि निकट भविष्य में दलाई लामा को निर्वासित होकर भारत आना पड़ेगा । भारत वापिस आकर उन्होंने सरकार को अपनी आधिकारिक रपट तो दी ही लेकिन ''प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु से मिलकर उन्हें तिब्बत पर आ चुके संकट और भविष्य में आने वाले तूफान से अवगत भी करवाया । उन्होंने यह आशंका भी जताई कि भविष्य में चीन भारत पर भी आक्रमण कर सकता है ।'' (सोनम वांगचुक, ए विजनरी लामा 56) नेहरु कितना समझ पाए, कितना नहीं, इसके बारे में तो अनुमान ही लगाए जा सकते हैं लेकिन कुशोक बकुला का तिब्बत को लेकर किया गया आकलन सही निकला और तिब्बत पर चीन ने पूरी तरह आधिपत्य जमा लिया व दलाई लामा को अपने साथियों सहित भारत में शरण लेनी पडी । इतना ही नहीं चीन ने 1962 में भारत पर भी हमला कर दिया ।

भगवान बुद्ध की पच्चीस सौवीं जयन्ती – भगवान बुद्ध की पच्चीस सौवीं जयन्ती के समारोहों में भाग लेने के लिए तिब्बत से दलाई लामा और पंचेन लामा भी आए थे । दिल्ली व देश के अन्य स्थानों पर भव्य समापन कार्यक्रम हुआ । दलाई लामा के पूरे प्रवास में कुशोक बकुला उनके साथ रहे । बकुला ने लद्दाख में भी भगवान बुद्ध की पच्चीस सौवीं जयन्ती के अवसर पर भव्य आयोजन किए, जिससे वहाँ के समाज में नवप्राण, नव चेतना का संचार हुआ ।

दलाई लामा का तिब्बत से निष्कासन – चीन ने 1959 में ऐसा कहा जाता है कि ल्हासा में षडयंत्रपूर्वक दलाई लामा को बन्दी बनाने की योजना बना ली । इसकी भनक किसी तरह तिब्बतियों को लग गई । उन्होंने दलाई लामा का आवास स्थान घेर लिया । चीन की दलाई लामा को बन्दी बनाने की योजना तो सिरे न चढ़ सकी लेकिन दलाई लामा छद्म वेश में भारत में अवश्य आ गए । भारत सरकार ने उनको भारत में शरण दी । दलाई लामा के साथ हजारों की संख्या में अन्य तिब्बती भी भारत में आए । उन तिब्बतियों को उचित ढंग से बसाना पहली प्राथमिकता थी । इस कार्य में कुशोक बकुला रिम्पोछे ने बहुत भाग-दौड़ की । वे उस समय जम्मू कश्मीर सरकार में उपमंत्री थे । इसलिए उनके पास राजनैतिक रुतबा भी था जो ऐसे अवसरों पर बहुत काम आता है । तिब्बती शरणार्थियों को लद्दाख में बसाने में तो उनकी ही महत्वपूर्ण भूमिका थी । वे यह मसला बराबर लोकसभा में उठाते रहते थे और लद्दाख में तिब्बती बस्तियाँ बसाने में दरपेश दिक्कतों की ओर संकेत करते रहते थे । लोक सभा को उन्होंने बताया, ''लद्दाख में जितने तिब्बती शरणार्थी आए हैं, उनको बसाने के लिए राज्य सरकार ने 1200 एकड़ भूमि दी है । लेकिन उनको बसाने का काम जल्दी नहीं हो रहा। मैं चाहता हूँ कि इस काम को जल्दी से किया जाना चाहिए । ..... तिब्बती शरणार्थियों के लिए एक अलग से सहायक विकास आयुक्त होना चाहिए तभी शरणार्थियों को बसाने का काम जल्दी किया जा सकता है।

''(लोक सभा 28 जुलाई 1971) तिब्बत में चीन ने अनेक विख्यात बौद्ध मठों को नष्ट कर दिया था । उन मठों के अनेक लामा भाग कर भारत आ गए थे । बकुला रिम्पोछे ने तिब्बत में नष्ट हो गए उनके मठों के भारत में निर्माण में सहायता की । इस मामले में वे साम्प्रदायिक संकीर्णता से मुक्त थे। चाहे में स्वयं गेलुग्पा सम्प्रदाय से ताल्लुक रखते थे लेकिन बिना किसी भेदभाव के वे निंगमापा, कग्यु और शाक्या सम्प्रदायों के मठों और भिक्षुओं की सहायता भी करते थे । भारत में बकुला रिम्पोछे द्वारा तिब्बतियों की की गई इस सहायता के लिए दलाई लामा ने कहा था कि, ''उस संकट काल में तिब्बती शरंणार्थियों की जो सहायता उन्होंने की थी हम सदा ही उसे आभार सहित याद रखेंगे ।'' (सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे– ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 92)

तिब्बत समस्या का समाधान – कुशोक बकुला की इच्छा थी कि तिब्बत समस्या का कोई ऐसा समाधान निकल आए जो सभी पक्षों को मंजूर हो । मंगोलिया में भारत के राजदूत बन जाने के बाद उन्हें आधिकारिक तौर पर चीन जाने की भी सुविधा प्राप्त हो गई । वहाँ उन्होंने उन तिब्बतियों से मिलने का प्रयास किया जो चीन के साम्यवादी शासन में भी कुछ न कुछ दखल रखते थे । इनमें दो महत्वपूर्ण व्यक्तियों की चर्चा की जा सकती है । पहले थे नगापो नवांग जिगमे । नवांग जिगमे उस प्रतिनिधिमंडल का हिस्सा थे जिसने बीजिंग में उस सत्रह सूत्रीय समझौते पर हस्ताक्षर किए थे जिसके बारे में कहा जाता है कि तिब्बत ने पहली बार स्वयं स्वीकार किया कि वह चीन का हिस्सा है । यह सत्रह सूत्रीय समझौता शुरु से ही विवादास्पद माना गया । कहा जाता है कि चीन ने बन्दूक के बल पर तिब्बती प्रतिनिधिमंडल से इस समझौते पर हस्ताक्षर करवाए थे । बाद में दलाई लामा ने इसे आधिकारिक तौर पर रद्द भी कर दिया था । नवांग जिगमे इस तथाकथित समझौते के बाद बीजिंग में ही रहने लगे थे । चीन सरकार उनका प्रयोग कभी–कभी दलाई लामा के खिलाफ बयान दिलवाने के लिए भी करती थी।

जब कुशोक बकुला मंगोलिया में अपना राजदूत का पद संभालने जा रहे थे तो रास्ते में बीजिंग में नब्बे वर्षीय नवांग जिगमे को उनके घर जाकर मिले । ''रिम्पोछे ने जिगमे से आग्रह किया कि उस पुरानी पीढी के बचे हुए गिने चुने लोगों में से हो । आपको प्रयास करना चाहिए कि चीन और परम पावन दलाई लामा, दोनों पक्ष आपस में बैठ सकें और समस्या का समाधान कर लें। जब तक दलाई लामा कायम हैं और सारे मामले के केन्द्र बिन्दु में हैं तब तक तो कोई सर्वमान्य समाधान संभव है। दलाई लामा के जाने के बाद यह मामला और पेचीदा हो जाएगा ।'' (सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे– ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 56) बाद में नवांग जिगमे की सहायता से ही रिम्पोछे को चीन के अधिकार वाले तिब्बत स्वायत्त क्षेत्र और शिंघाई जाने की अनुमति मिली । इन क्षेत्रों में रिम्पोछे ने तिब्बतियों की वास्तविक दयनीय स्थिति को स्वयं देखा ।

बकुला रिम्पोछे को पता चला कि काठमांडू में वर्ल्ड फैलोशिप ऑफ बुद्धिस्ट सम्पन्न होने वाली है जिसमें तिब्बत से दसवें पंचेन लामा भी आने वाले हैं । यह घटना 1986 की है । तिब्बत में दलाई लामा के बाद रुतबे में पंचेन लामा का ही नाम आता है । बकुला रिम्पोछे उन्हें 1955–56 में मिले थे । अब तीस साल बाद तिब्बत में बहुत कुछ बदल गया था । चीन ने तिब्बत की संस्कृति और सभ्यता को इतना तहस–नहस किया था कि अब उसको पहचानना भी मुश्किल था । पंचेन लामा के बारे में कहा जाता था कि वे दलाई लामा के खिलाफ चीन के साथ मिल गए हैं । लेकिन फिर एक दिन 18 मई 1962 को पंचेन लामा का चीन सरकार को 70000 अक्षरों वाला लिखा पत्र दुनिया भर की अखबारों की सुर्खियों में आ गया । पंचेन लामा ने तिब्बत को लेकर चीन सरकार की कटु आलोचना की थी । चीन सरकार को पंचेन लामा से शायद इस साहस की आशा नहीं थी । उन्हेंने लामा को सार्वजनिक रूप से प्रताड़ित किया, शारीरिक यातना दी और अन्त में कारागार में डाल दिया । बहुत अरसे बाद पंचेन लामा की बन्दीगृह से

मुक्ति हुई और चीन सरकार ने पुनः उनको प्रस्थापित किया । लेकिन पंचेन लामा किसी से मिल नहीं सकते थे । विदेशियों से मिलने कि बात तो दूर, उनका तिब्बत वालों से मिल पाना भी कठिन था । वही पंचेन लामा काठमांडू आ रहे हैं, यह जान कर बकुला रिम्पोछे ने भारतीय प्रतिनिधिमंडल को लेकर नेपाल जाने और किसी तरह उनसे मिलने का निर्णय किया । कार्यक्रम में दोनों ने एक दूसरे को देखा और अभिवादन किया । बकुला रिम्पोछे को आश्चर्य हुआ जब पंचेन लामा ने स्वयं अकेले में उनसे मिलने की इच्छा जाहिर की । वे दोनों काठमांडू स्थित चीनी दूतावास में मिले । दोनों के सिवा कमरे में कोई और नहीं था । रिम्पोछे के सहायक सोनम वांगचुक वहाँ मौजूद थे । उनके अनुसार, ''पंचेन लामा ने कहा यद्यपि तिब्बत में बहुत बड़े पैमाने पर विधवंस हुआ है, लेकिन मैं वहाँ बौद्ध संस्कृति को पुनर्जीवित करने का हर संभव प्रयास कर रहा हूँ । उन्होंने इस बात पर गहरा दुख प्रकट किया कि कुछ लोग उनमें और परम पावन दलाई लामा में मतभेद पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं । लेकिन वे इसमें कभी सफल नहीं होंगे । पंचेन लामा ने बकुला रिम्पोछे को कहा कि उनके मन में दलाई लामा के लिए बहुत ही सम्मान की भावना है और वे मेरी यह भावना उन तक पहुँचा दें । पंचेन लामा ने कहा कि मुझे अब किसी का कोई डर नहीं है और मैं तिब्बत में मठ परम्परा और बुद्धमत को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहा हूँ । उन्होंने बकुला रिम्पोछे से कहा कि आप भारतीय पक्ष का ध्यान रखें और मैं चीनी पक्ष का ध्यान रखूँगा । उस समय विपरीत परिस्थितियों में भी पंचेन लामा का साहस और संकल्प प्रशंसनीय था। ''(सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे- ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 54'' पंचेन लामा और दलाई लामा के बीच मतभेद की तथाकथित कथा तो अब पुरानी हो चुकी थी । बकुला रिम्पोछे का प्रयास था कि पंचेन लामा अपने सम्बंधों का प्रयोग चीन और दलाई लामा को समझौते की मेज तक लाने के लिए करें । लेकिन इसे विधि का विधान ही कहा

जाएगा कि कुछ समय बाद ही 28 जनवरी 1989 को रहस्यमय हालात में पंचेन लामा की मृत्यु हो गई ।

बकुला रिम्पोछे का मानना था कि दलाई लामा की स्टार्सवर्ग घोषणा के बाद तिब्बत मामले की पूरी दिशा ही बदल गई है । दलाई लामा ने स्वयं ही अपनी पंचसूत्रीय घोषणा में स्वीकार किया है कि इस समय तिब्बत चीन का हिस्सा है । इस घोषणा से चीन की सबसे बड़ी आपत्ति दूर हो गई है । अब मसला केवल व्यावहारिक स्वायत्तता का बचा है। उन्होंने भारत सरकार से भी आग्रह किया कि वह दोनों पक्षों में संवाद स्थापित करने के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभाए । तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा ''अब मसला केवल व्यावहारिक स्वायत्तता का बचा है । भारत सरकार को दोनों पक्षों में संवाद स्थापित करने के लिए मध्यस्थ की भूमिका निभानी चाहिए।'' (सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे– ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 57)

सातवां अध्याय

सामाजिक समरसता

कुशोक बकुला सभी सम्प्रदायों, मतों और पंथों के बीच सामंजस्य बनाकर चलने के पक्षधार थे । वे मानते थे कि सभी मजहबों और पंथों को एक दूसरे की आस्थाओं और विश्वासों का सम्मान करना चाहिए और आपस में संवाद बनाए रखना चाहिए । संवाद से समस्या सुलझती भी है और प्रगति का रास्ता भी संवाद से ही निकलता है । 1964 में विश्वभर के हिन्दुओं के सामाजिक आचार-विचार पर चर्चा के लिए एक मंच की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी । विश्व भर में फैले भारतीय मोटे तौर पर समय-समय पर हिन्दुस्थान से ही गए थे । वे अपनी संस्कृति और रीति रिवाजों से जुड़े रहें, इसके लिए आपस में विचार-विमर्श करने के लिए एक व्यास पीठ की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी । भारत भूमि से अनेकों पंथ, मत और सम्प्रदाय विकसित हुए हैं । उन सभी को एक आसन पर बैठ कर युगानुकूल समस्याओं के समाधान का रास्ता निकालना चाहिए और कालबाह्य हो चुके रिवाजों से छुटकारा पा लेना चाहिए ।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए केरल के स्वामी चिन्मयानन्द जी के मुम्बई स्थित सन्दीपनी आश्रम में एक सम्मेलन आयोजित किया जा रहा था। लेकिन इसके साथ ही यह भी अनुभव किया जा रहा था कि बौद्ध और हिन्दु समाज को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए । इसी का संकेत 21 अगस्त 1964 को दादा साहेब आप्टे ने मुम्बई में दिया । उन्होंने कहा, ''वैदिक काल से ही यह हमारी परम्परा रही है कि हम समाज सुधार और बुराईयों को दूर करने के निमित्त संकट की घड़ियों में एकत्रित होते रहे हैं। जैन सम्मेलनों और बौद्ध परिषदों के भी ऐसे आयोजन होते रहे हैं । हमारे महान सिक्ख

धर्मगुरुओं ने पंथ सम्मेलनों की महत्ता का बखान किया है, जिनमें समय-समय पर अपने समाज में फैली बुराईयों को दूर करने के उपायों पर विचार-विमर्श होते रहे ।" (रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, प्रेरणा के अमर स्वर, पृष्ठ 61) इस उद्देश्य के लिए दादा साहेब आप्टे देश भर में विद्वानों, साधु-सन्तों, भिक्षुओं से मिले । वे उन्नीसवें कुशोक बकुला रिम्पोछे से भी मिले और उन्हें सभा में आने का निमंत्रण दिया । बकुला चाहते थे कि भारत में वैदिक-श्रमण परम्परा में सामंजस्य स्थापित किया जाए और इसके स्वभाविक विकास की तलाश की जाए । बकुला रिम्पोछे ने स्वामी चिन्मयानन्द को इस सम्मेलन की सफलता के लिए अपना शुभकामना संदेश भेजा ।

विभिन्न आस्था और विश्वासों में सामंजस्य बकुला के लिए कोई नई अवधारणा नहीं थी । यह उनके परिवार की परम्परा थी । उनके बड़े भाई फुंछोक नमग्याल घर बार छोड़कर सन्यासी हो गए थे । कुशोक बकुला उस समय तिब्बत के द्रेपुंग विश्वविद्यालय में उच्च अध्ययन के लिए गए हुए थे । 1940 में वहाँ से अपनी शोध की सर्वोच्च डिग्री गेशे लेकर वापिस लद्दाख अपने घर पहुँचे तो पता चला कुछ साल पहले उनके बड़े भाई फुंछोक नमग्याल घर-बार छोड़ कर चले गए थे । वे सांसारिक परिवेश से उपराम रहने लगे थे और धीरे-धीरे सभी से कटने लगे थे । संसार असार है, जगत नश्वर है, इस प्रकार की बातें करते रहते थे । फिर एक दिन वे घर से गायब हो गए और लाख खोज करने पर भी उनका कुछ अता-पता नहीं चला । कुशोक बकुला ने भी अपने बडे भाई को खोजने के अनेक प्रयास किए लेकिन उन्हें भी सफलता नहीं मिली । कुशोक बकुला को जब भी कोई ज्योतिषी या तांत्रिक मिलता तो उससे अपने भाई का अता-पता जरुर पूछते । ज्योतिषियों ने इतना तो बताया कि वे संसार त्याग कर साधु बन गए हैं और अब पुनः सांसारिक बन्धनों में नहीं फँसेंगे और न ही अब कभी आपसे मिलेगें । वह हिमालय की गुफाओं में तपस्या और साधना कर रहे हैं।

लेकिन इसके बावजूद बकुला निराश नहीं हुए । वे बड़े भाई की खोज में निरन्तर लगे रहे । तब एक दिन किसी ज्योतिषी ने बताया कि आपको आपका भाई जरुर मिलेगा लेकिन उसका और आपका मिलन पचास साल बाद ही संभव है । पचास साल की बात सुन कर बकुला निराश तो हुए लेकिन इससे उन्हें यह आशा भी जग गई कि वे कभी न कभी अपने भाई को जरूर मिल सकेंगे ।

उनकी यह आशा ही थी कि वे एक दिन वाराणसी के गंगा घाट पर जा पहुँचे । वहाँ साधुओं में अपने भाई की शिनाख्त का प्रयास करने लगे । घाट के कुछ लोगों ने वहाँ घूम रहे सभी साधुओं को बुला लिया ताकि बकुला अपने भाई की शिनाख्त कर सकें । वहाँ देश के अनेक पर्वतीय क्षेत्रों के रहने वाले साधु तो मौजूद थे लेकिन लद्दाख का वह साधु कहीं नहीं था जिसकी तलाश वे कर रहे थे । बकुला ने अनेक परिचितों को अपने भाई का हुलिया बताते हुए प्रार्थना कर रखी थी कि यदि कहीं इस साधु के बारे में कुछ पता चले तो अवश्य बताएँ । समय बीतता गया लेकिन माठो गाँव के उस साधु की कोई खोज खबर नहीं मिली। कुशोक बकुला जम्मू कश्मीर सरकार में मंत्री भी बन गए, लोकसभा के सदस्य भी हो गए लेकिन भाई को खो देने की वेदना उनको कहीं भीतर ही भीतर सालती रहती थी । उन्हें वह दिन अब भी याद था जिस दिन वे तिब्बत से अपनी पढ़ाई पूरी करके घर वापिस लौटे थे और भाई के चले जाने की खबर उन्हें मिली थी । वह 1940 था और आज 1985 आ गया था। पूरे पैंतीस साल हो गए थे । लेकिन उस साधु का कोई अता-पता नहीं था । फिर एक दिन किसी ने बताया कि हिमाचल प्रदेश के मनाली में इस प्रकार का एक लद्दाखी साधु देखा गया है। बकुला ने तुरन्त अपने एक परिचित को पता लगाने के लिए मनाली भेजा । वहाँ इस साधु का पता चल गया और सारे लद्दाख में खबर फैल गई कि नमग्याल राजवंश का राजा फुंछोक नमग्याल मनाली में हिमालय की उपत्यकाओं में सन्यासी बन कर रह रहा है । लद्दाख से अनेक व्यक्ति उस

सन्यासी से मिलने के लिए जाते रहे । सन्यासी मिलता तो था लेकिन अपने सांसारिक जीवन के बारे में कुछ नहीं बताता था । वह फुंछोक नमग्याल है, इससे तो वह पूरी तरह इन्कार ही कर रहा था । जब कोई पूछता कि आप कहाँ के रहने वाले हैं और आप के माता–पिता कौन हैं तो उसका उत्तर होता सन्यासी का कोई माता–पिता नहीं होता और न कोई स्थाई स्थान होता है । न उसकी कोई जाति होती है और न ही कोई कुल–गोत्र होता है । एक दिन सन्यासी ने अपनी धुन में लद्दाख का वर्णन करते हुए कहा कि इस शरीर ने नुबरा घाटी में आकार ग्रहण किया है । उन्होंने एक परिवार का नाम भी बताया, जिस परिवार में उनका जन्म हुआ था । सुनने वालों ने नुबरा घाटी में जाकर उस परिवार की तलाश शुरु कर दी । परिवार का तो पता चल गया लेकिन उस परिवार का कोई सदस्य न कभी गुम हुआ था और न ही साधु बना था । फुंछोक नमग्याल का बेटा रिजोंग सरस रिम्पोछे, बेटी नमग्याल वांगमो और उनकी बहन नोरजिन वांगमो, इस चर्चित सन्यासी से मिलने के लिए मनाली पहुँचे । वे अपने बच्चों और बहन से देर तक जन्म–मरण, मोक्ष–निर्वाण की बातें करते रहे लेकिन सन्यासी बनने से पूर्व के जीवन का रहस्य उन्होंने फिर भी नहीं खोला । लगता था सन्यासी स्थितप्रज्ञ हो गए हैं । सांसारिक मोह–माया को उन्होंने अरसा पहले जीत लिया है । अपने बच्चों को सामने देख कर भी वे भावशून्य ही रहे और दर्शन शास्त्र की गुत्थियों की चर्चा करते रहे । लेकिन उनके बेटे और बेटी व बहन को पक्का विश्वास हो गया कि सामने बैठा सन्यासी उनका राजा फुंछोक नमग्याल ही है ।

अन्त में कुशोक बकुला ने स्वयं मनाली जाने का निर्णय किया । दोनों भाईयों में प्रगाढ स्नेह तो था ही । अब एक सन्यासी दूसरा भिक्खु ! कौन किससे अपने–आपको छिपा पाएगा ? अक्टूबर 1986 में कुशोक बकुला मनाली पहुँचे । उनके साथ उनके सचिव सोनम वांगचुक भी थे । शाम हो चुकी थी । दोनों सरकारी गेस्ट हाऊस में ठहरे । रिम्पोछे ने कहा जाकर उस स्थान का पता करो जहाँ वह सन्यासी रहता है । सोनम उस

जगह की तलाश में निकल पड़े । लोगों ने बताया कि वह स्थान मनाली से बाहर रोहतांग की ओर है । वहाँ सन्यासी एक गुफा में रहता है । रोहतांग की ओर चलते–चलते सोनम नेहरु कुंड पहुँच गए । उजाड़ और सुनसान । वहीं वह गुफा थी जहाँ सन्यासी रहता था । सोनम ने स्थान को अच्छी तरह देख और पहचान लिया । लेकिन वे उसके अन्दर नहीं गए । वहीं से वापिस आ गए । वापिस आकर उन्होंने बकुला रिम्पोछे को सब कुछ बताया ।

आगे की कहानी उनके सचिव सोनम वांगचुक के ही शब्दों में, ''अगली सुबह रिम्पोछे साधु को मिलने के लिए नेहरु कुंड की ओर चल पड़े । वहाँ पहुँचने पर रिम्पोछे ने मुझे कहा कि तुम अन्दर जाओ और साधु को मेरे आने की सूचना दो । जहाँ साधु रहता था वह कोई घर तो था नहीं, केवल एक गुफा थी जिसका न कोई दरवाजा था और न कोई खिड़की । सड़कों पर पड़े डामर के खाली ड्रम को काट कर बनाया टीन का पत्ता गुफा के दरवाजे का काम कर रहा था । जब मैंने उसे खटखटाया तो अन्दर से किसी ने हिन्दी में पूछा, कौन है? मैं अन्दर चला गया, उनको नमस्कार किया और बताया कि मैं कुशोक बकुला रिम्पोछे का सचिव हूँ और रिम्पोछे आपसे मिलने के लिए आए हैं । वह शीत भरी सुबह थी और सन्यासी अपने बिस्तर में लेटे हुए थे । लेकिन जैसे ही उन्होंने बकुला का नाम सुना तो उनका चेहरा दमक उठा । उस उत्साह को मैं साफ देख सकता था । वे तुरन्त अपने बिस्तर से बाहर निकले और मुझे गफ़ा को व्यवस्थित और साफ करने व रिम्पोछे के बैठने के लिए आसन तैयार करने के लिए कहा । वहाँ कोई मेज तो था नहीं, इसलिए मैंने टीन के एक पीपे को मेज के तौर पर रख दिया । सन्यासी ने बकुला के बैठने के लिए एक छोटी सी चटाई निकाली और उस पर अपना शाल बिछा दिया । जब मैंने रिम्पोछे के बैठने की सारी व्यवस्था कर दी और गुफा को भी साफ कर दिया तो सन्यासी ने बकुला को अन्दर बुला लाने के लिए कहा । लेकिन इस साफ सफाई के कारण गुफा में इतनी धूल उड़ रही थी कि मैंने कुछ देर के लिए धूल छँट जाने की प्रतीक्षा

की । साधु की दाढ़ी लम्बी थी और सिर के बाल लम्बे थे । वे पद्म आसन में बैठे थे और उन्होंने आगे साफेद शाल डाल रखा था । उन्होंने रिम्पोछे को अन्दर बुला लाने के लिए कहा ।

मैं कार में से रिम्पोछे को ले आने के लिए बाहर आ गया । जब हम दोनों गुफा की ओर जा रहे थे तो रिम्पोछे ने पूछा कि इतनी देर गुफा में क्या करते रहे तो मैंने उन्हें गुफा की सफाई के बारे में बताया । वे हंस पड़े । जैसे ही रिम्पोछे ने गुफा में प्रवेश किया साधु उनका स्वागत करने के लिए अपने स्थान से उठ खड़े हुए । उस समय के दृश्य और भावनाओं को शब्दों में व्यक्त करना मेरे लिए बहुत ही कठिन है । एक क्षण के लिए दोनों चुप रहे । अगले ही क्षण साधु ने अपने उत्साह को रोकने में असमर्थ होकर रिम्पोछे को आलिंगन में भर लिया और कहा, आज मैं अपने भाई को मिलकर कितना प्रसन्न हूँ इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता । सन्यासी बनने के बाद किसी के साथ किसी प्रकार का पारिवारिक सम्बंध नहीं रहता। लेकिन सन्यासी बनने के बाद उन्होंने शायद पहली बार किसी को अपना भाई कहा था । यह दो बिछुड़े भाईयों का भाव-भीना मिलन था और मैं वहाँ खड़ा बरबस रो पडा । दोनों एक-दूसरे से अलग हुए तो साधु ने रिम्पोछे को बैठने के लिए कहा । वे बहुत प्रसन्न दिखाई दे रहे थे और रिम्पोछे विचार तन्द्रा में खो गए थे । तभी अचानक राजा फुंछोक नमग्याल ने रिम्पोछे से कहा कि हम केवल इस बार दो भाईयों के तौर पर मिल रहे हैं । जब अगली बार मिलेंगे तो केवल सन्यासी के रूप में ही मिलेंगे । साधु ने इस नश्वर संसार की अस्थिरता की बातें की । हिन्दु और बौद्ध ग्रन्थों के अनेकों उद्धरण उद्धृत किए । उसके बाद उन्होंने अपनी बाँसुरी उठाई और एक गीत गाया । दोनों भाई लगभग एक घंटे से भी ज्यादा समय तक बातें करते रहे । सन्यासी बार-बार धुम्रपान कर रहे थे और इससे रिम्पोछे को असुविधा हो रही थी । मैंने किसी प्रकार उनकी माचिस की डिबिया छिपा ली । वे सिगरेट को बिना सुलगाए हाथों में लिए रहे । उस गफुा में फुंछोक

नमग्याल के पास सूत्र व अन्य ग्रन्थों का ढेर था । हिन्दु और बौद्ध दर्शन का उनका ज्ञान अप्रतिम था । उन्होंने एक ग्रन्थ के पन्ने पलटते हुए उनमें से बकुला रिम्पोछे की एक बहुत ही पुरानी फोटो निकाली और रिम्पोछे को दिखाते हुए कहा कि यह उनका बहुमूल्य खजाना है । सन्यासी रिम्पोछे को राजा कह कर सम्बोधित कर रहे थे । रिम्पोछे के पूछने पर उन्होंने कहा, राजा वह होता है जो लोगों के दिलों पर राज करता है । मुझे पता है लद्दाख के लोग आपको कितना प्यार करते हैं और सम्मान देते हैं । इसलिए आप लद्दाख के राजा हो । रिम्पोछे ने कहा, क्या आप अपनी पुत्री और परिवार से मिलने के लिए अपने गाँव माठो चलेंगे ? सन्यासी ने कहा, जरूर चलूँगा यदि राम के साथ लक्ष्मण भी चले । ''(S.W.Shakspo, Bakula Rinpoche & A Visionary Lama and Statesman, page 34 & 47) कुशोक बकुला रिम्पोछे ने अन्ततः अपने भाई को ढूँढ निकाला था । चाहे अब वह राजा फुंछोक नमग्याल न रह कर एक सन्यासी थे जो हिमालय की एक गुफा में बैठ कर हिन्दु-बौद्ध दर्शन की गुत्थियाँ सुलझा रहे थे । उधर कुशोक बकुला मंगोलिया और रूस के बेलारूस में भगवान बुद्ध के बचनों को पहुँचाने में दिन-रात एक किए हुए थे । बौद्धिक-श्रमण परम्परा से ही अन्ततः विश्व की समस्याओं का समाधान निकलेगा, इसलिए दोनों भाई उन्हीं परम्पराओं को जीवन्त करने के प्रयासों में तल्लीन थे । सन्यासी लद्दाख में अपने पैतृक गाँव माठो में कुछ समय के लिए गए भी लेकिन जल्दी ही मनाली की अपनी उसी गुफा में वापिस लौट गए जिसमें उनके ढेरों ग्रन्थ भरे पड़े थे ।

कुशोक बकुला सामाजिक समरसता के हिमायती थे । ईसाई मिशनरियां दूसरे देशों में छल-बल से मतान्तरण करती हैं । बकुला मानते थे कि इससे स्थानीय समाजों में तनाव बढ़ता है । कोई भी पन्थ या सम्प्रदाय उस अनन्त की तलाश की यात्रा का वाहक है। उसके लिए प्रत्येक स्थान, समाज की अपनी परम्पराएं हैं । विभिन्न पंथ संख्या बढ़ाने के माध्यम नहीं

हैं बल्कि साधना के रास्ते हैं । लेकिन उनको दुख था कि ईसाई मिशनरियां अपने पैसे के बल पर गरीब देशों में मतान्तरण द्वारा सामाजिक–सांस्कृतिक संतुलन को नष्ट करती हैं ।

कुशोक बकुला रिम्पोछे भारत की उस महान साधक परम्परा के प्रतिनिधि थे जिसके लिये धर्मोपासना वैयक्तिक मुक्ति और निजी उपलब्धि का साधन न होकर समस्त समाज की उन्नति और मुक्ति का उपक्रम है। धर्म उनके लिए आध्यात्मिक साधना का वाहक था, मजहबी संख्या में इजाफा करने के लिए नहीं । सन् 1996 ई. में ब्रिटेन में मजहबों और प्रकृति संरक्षण पर सम्मेलन हो रहा था । इसमें दुनिया भर के विभिन्न सम्प्रदायों के विद्वान आमंत्रित थे । सम्मेलन का मूल उद्देश्य था कि विभिन्न सम्प्रदाय प्रकृति व पर्यावरण के संरक्षण में क्या भूमिका निभा सकते हैं । विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व इस सम्मेलन में कुशोक बकुला रिम्पोछे व स्वामी चिदानन्द कर रहे थे । अपना वक्तव्य देते हुए रिम्पोछे ने कहा कि, ''कुछ अति उत्साही ईसाई मिशनरियां दूसरे की संस्कृतियों एवं विश्वासों को नष्ट कर मात्र अपने संख्या बल में वृद्धि करना चाहती है, जो अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है और प्रतिक्रियापरक है। ये मिशनरियां गरीब देशों के लोगों की दयनीय आर्थिक दशा का शोषण करती हैं और उन्हें अपने मजहब में मतान्तरित करती हैं और वहाँ की परम्परागत आस्थाओं की खिल्ली उड़ाती हैं । मैं इसके सख्त खिलाफ हूँ और इसकी कड़ी निन्दा की जानी चाहिए । बाँह मरोड़ कर किए गए मतान्तरण की प्रतिक्रिया भी हो सकती है । दूसरे की परम्परा और आस्था को गहरी समझ के बाद स्वेच्छा से अपनाया जा सकता है। इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती । अपनी बात को पुख्ता करने के लिए रिम्पोछे ने मंगोलिया का उदाहरण दिया और कहा कि वहाँ ईसाई मिशनरियां बौद्ध मत को पिछड़ा हुआ मत बता रही हैं और इसे मंगोलिया की निर्धनता के लिए जिम्मेदार ठहरा रही हैं ।'' (सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे– ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 80)

बकुला रिम्पोछे की इस खरी-खरी से कैंटरबरी के बिशप हत्थे से उखड़ गए। उन्होंने रिम्पोछे से कहा कि आप सम्मेलन के निर्धारित विषय तक अपने को सीमित रखें। आपकी इन बातों का प्रकृति व पर्यावरण के संरक्षण से क्या ताल्लुक है ? रिम्पोछे ने एक बार फिर बिशप को आड़े हाथों लिया। उन्होंने कहा, ''यही मजहबी असहनशीलता विभिन्न मजहबों में प्रकृति, पर्यावरण संरक्षण और लोक संस्कृति में अन्तर-संवाद को बाधित करती है। उन्होंने मंगोलिया का ही उदाहरण देते हुए कहा कि वहाँ सत्तर साल से साम्यवादी शासन रहा। तब वहाँ मजहबी रीति रिवाज व कर्मकांड प्रतिबन्धित था। लेकिन इसके बावजूद मंगोलियाई अपने प्रकृति प्रेम और अपनी परम्पराओं से जुड़े रहे। यह सब परम्परागत आस्थाओं के कारण ही संभव था। अभी भी कोई मंगोलियाई, चाहे वे मजहब में विश्वास न भी करता हो, जब वोदका भी पीता है तो थोड़ा-थोड़ा चारों दिशाओं में छिड़क कर प्रकृति को अर्पित करता है। मंगोलिया में आज भी दुनिया के सबसे पुराने पवित्र पर्वत हैं जहाँ सदियों से शिकार व विनाश की मनाही है। यह सब इसलिए है कि वे अपनी प्राचीन परम्पराओं में विश्वास करते हैं, जो कहीं न कहीं इनकी बुद्ध मत में आस्था से जुड़ा है। यदि ये किसी दूसरे मजहब में मतान्तरित हो जाएँगे तो यह सब नष्ट हो जाएगा।'' (सोनम वांगचुक शकपो, बकुला रिम्पोछे- ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 81) बिशप के पास अब कोई उत्तर नहीं था। लेकिन यह भारतीय पंथों, मतों और सम्प्रदायों के आन्तरिक संवाद व सहनशीलता से उपजा निष्कर्ष था जिसका उद्घोष रिम्पोछे ने इंग्लैंड में सबके सामने किया था।

कुशोक बकुला ईसाई मिशनरियों की इस मतान्तरण पद्धति को भारतीय सन्दर्भों में भी अच्छी तरह जानते थे और उन्होंने इसको अच्छी तरह अनुभव किया था। लद्दाख से अस्सी बच्चों को ईसाई मिशनरियां बाहर लेकर चली गई थीं, उसका हाहाकार अभी भी लद्दाख में समाप्त नहीं हुआ था। मंगोलिया में तो वे इस सारे अभियान को नित्य अपनी आँखों से देखते

थे । बौद्ध मत को निकृष्टतम बता कर लोगों को चर्च की ओर खींचा जा रहा था । मंगोलिया में भी इस प्रकार की एक घटना कुशोक बकुला के साथ हुई थी । 1992 में परम पावन चौदहवें दलाई लामा जी मंगोलिया की यात्र पर थे । देश अभी हाल ही में साम्यवाद के तानाशाही शिकंजे से मुक्त हुआ था । लोगों में दलाई लामा के आगमन को लेकर भारी उत्साह था । उनका इस प्रकार का भव्य स्वागत हुआ जिसकी मिसाल मिलना मुश्किल है।

एक दिन दलाई लामा देश की राजधानी उलान बतार में विश्व के अन्य पंथों के बारे में अपने अनुभव बता रहे थे । उन्होंने ईसाई मिशनरियों के काम की भूरि-भूरि प्रशंसा की । उन्होंने कहा ये मिशनरियां गरीबों के लिए विद्यालय, चिकित्सालय खोलती हैं । सेवा के अन्य कार्यों में लगी रहती है । निर्धनों के प्रति करुणा और दया का भाव रखतीं हैं । दलाई लामा ने मिशनरियों की प्रशंसा के पुल बाँध दिए । महात्मा बुद्ध के बारे में उन्होंने प्रसंगवश ही जिक्र किया । मंगोलिया में साम्यवादी शासन समाप्त हो जाने के बाद पश्चिमी देशों की ईसाई मिशनरियां भी सक्रिय हो गई थीं । उनके पास अकूत धन था । मंगोलिया में निर्धनता व्याप्त थी । मिशनरियां अपने धन के बल पर सेवा के नाम से मतान्तरण का काम कर रही थीं और भगवान बुद्ध के बचनों को पिछड़ा होने की निशानी बता रहीं थीं । कुशोक बकुला भली-भांति समझ गए कि अपने कामों के बारे में दलाई लामा का प्रमाणपत्र मिल जाने के बाद ये मिशनरियां उसका प्रयोग मंगोलिया के भोले-भाले लोगों के बीच अपने मतान्तरण अभियान को आगे बढाने के लिए हथियार के तौर पर इस्तेमाल करेंगीं । मीडिया भी इसको कवरेज देगा।

कुशोक बकुला जानते थे कि दलाई लामा तो यह सब कुछ शुद्ध और निर्मल भाव से कह रहे थे । लेकिन देश की युवा पीढ़ी को साम्यवादियों के लम्बे शासन में बुद्ध मत के बारे में नकारात्मक भाव से ही बताया गया है । यही काम अब मिशनरियां कर रही थीं । दलाई लामा के

उदबोधन को निश्चित ही सन्दर्भ से काट कर देखा जाएगा । कार्यक्रम के बाद बकुला रिम्पोछे परम पावन दलाई लामा से मिले और उन्हें मंगोलिया की स्थिति से परिचित करवाया और वक्तव्य की भी चर्चा की । उन्होंने दलाई लामा को बताया कि मंगोलिया में उनके प्रत्येक शब्द का युवा पीढ़ी के मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पडता है । दूसरे दिन भी उलानबतार में ही दलाई लामा जी का कार्यक्रम था । उसमें उन्होंने विस्तार से बौद्ध मत के बारे में बताया । उन्होंने कहा कि बौद्धमत वैज्ञानिक व तर्क पर आधारित है । ईसाई मत की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि यह मत यूरोप में फला-फूला है । इसलिए इसकी परम्पराएँ यूरोप की सभ्यता के अनुकूल हैं और यह वहाँ के लोगों की प्रकृति के अनुकूल है । लेकिन मंगोलिया जैसे बौद्ध देशों के लिए भगवान बुद्ध का दिखाया मार्ग ही हितकारी है क्योंकि यही मार्ग उनके संस्कार, संस्कृति और स्वभाव के अनुकूल है । उपरोक्त प्रसंग में कुशोक बकुला ने अत्यन्त ही सावधानी से रास्ता निकाला । बकुला रिम्पोछे किसी मत या सम्प्रदाय के खिलाफ नहीं थे । बल्कि वे मानते थे कि छल-कपट और लोभ-लालच से किया गया मतान्तरण किसी के भी हित में नहीं है । विभिन्न मत और पंथ अपनी संख्या बढ़ाने के राजनैतिक आन्दोलन नहीं हैं बल्कि अनुभूति की साधना है । यही सामाजिक समरसता का मूलमंत्र है ।

आठवां अध्याय

अन्तिम यात्रा

मंगोलिया में अपने कर्तव्य की पूर्ति करके 2000ई के अन्त में कुशोक बकुला वापिस भारत लौट आए । लद्दाख में अपने पेथुप मठ में वे रहने लगे । उन्होंने अपने जीवन के आठ दशक से भी ज्यादा वसन्त देख लिए थे । उन्होंने अपनी इस जन्म की कथा लिपिबद्ध करनी शुरु कर दी । बकुला का यह उन्नीसवाँ संसार आगमन था । इस जन्म का कार्य उनका पूरा हो गया लगता था । एक दिन उनकी आत्मकथा भी पूरी हो गई । 17 सितम्बर 2001 को लेह में एक भव्य आयोजन में जम्मू कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल गिरीश चन्द्र सक्सेना ने उनकी उपस्थिति में उनकी इस आत्मकथा का विमोचन किया । 2001 में उन्होंने भगवान बुद्ध की 2545वीं जयन्ती का आयोजन लेह में किया । इस अवसर पर लद्दाख के कोने–कोने से श्रद्धालु एकत्रित हुए थे । ये केवल बौद्ध और हिन्दु समाज के ही लोग नहीं थे, इनमें शिया समाज के बल्ती और मुसलमान समाज के लोग भी थे । उन्होंने सभी को मिल–जुल का रहने का उपदेश किया, क्योंकि सभी का मूल एक ही है । कुशोक बकुला ने संतोष प्रकट किया कि लम्बे संघर्ष के बाद लद्दाख के निवासियों को जनजाति का दर्जा भी मिल गया है और क्षेत्रीय पर्वतीय परिषद भी स्थापित हो गई है । लेकिन लद्दाख के पूर्ण विकास और पहचान के लिए जरुरी है कि इसे केन्द्र शासित राज्य का दर्जा दिया जाए । उन्होंने कहा कि इसकी प्राप्ति के लिए संघर्ष जारी रहना चाहिए लेकिन उसमें हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है ।

धीरे–धीरे वे अन्तर्मुखी हो रहे थे । लेकिन अभी उनकी एक मंगोलिया यात्रा शेष थी । मंगोलिया सरकार ने उन्हें अपने देश का सर्वोच्च

नागरिक सम्मान **'पोलर स्टार'** प्रदान करने का निर्णय किया था । उसे प्राप्त करने के लिए वे 2001 में फिर मंगोलिया गए । 2002 के अंतिम दिनों में वे लंदन प्रवास पर गए । महारानी ने उन्हें बकिंघम महल में ठहरने के लिए निमंत्रित किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया । पचपन साल पहले इसी प्रासाद से भारत का शासन नियंत्रित होता था । अब उसी में कुशोक बकुला एक सम्मानित अतिथि के नाते विराजमान थे । लंदन प्रवास से वे वापिस आकर धीरे-धीरे अपने-आप को समेटने में लग गए। बकुला का यह उन्नीसवाँ संसार आगमन था । इस जन्म का कार्य उनका पूरा हो गया लगता था । साल 2003 आधे से भी ज्यादा बीत गया था । अगस्त में वे निमोनिया का शिकार हो गये । उन्हें दिल्ली के अस्पताल में भर्ती कराया गया । रोग पर काबू पा लिया गया और वे ठीक हो गए । अस्पताल से भी छुट्टी मिल गई । लेकिन दिल्ली की भीषण गर्मी और उमस ने उन्हें परेशान कर रखा था। वे अगस्त मास में ही कुछ दिनों के लिए फिर मंगोलिया चले गए । उधर मनाली के उस सन्यासी की उम्र भी सौ साल की हो गई थी, जिसे वे 1986 में उसकी गुफा में मिल कर आए थे । आश्रम व्यवस्था भी तो सौ साल की ही होती है । ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और अन्त में सन्यास आश्रम । सौ साल के हो जाने पर सन्यास आश्रम की अवधि पूरी हो जाती है । मनाली का सन्यासी अपने आश्रम की अवधि पूरी हो जाने पर अनन्त लोक को चला गया था । यह सन्यासी कुशोक बकुला रिम्पोछे का बड़ा भाई था । बकुला को अपने भाई के देहान्त की यह सूचना मंगोलिया में मिली ।

एक बार वे फिर निमोनिया का शिकार हो गए । मंगोलिया में उचित इलाज की व्यवस्था नहीं थी । उनके बहुत से शिष्यों ने उन्हें बीजिंग ले आने के लिए कहा क्योंकि वहाँ चिकित्सा की उच्चकोटि की व्यवस्था विद्यमान थी । उन्हें तुरन्त बीजिंग ले जाया गया और अस्पताल में भर्ती करवा दिया गया । लेकिन डाक्टरों के लाख प्रयासों के बाबजूद रोग काबू में

नहीं आ रहा था । डाक्टरों ने उन्हें दिल्ली ही ले जाने की सलाह दी । लेकिन अब तक रिम्पोछे का स्वास्थ्य इतना बिगड़ चुका था कि उन्हें साधारण फ्लाईट से दिल्ली ले जाना संभव नहीं था । वे एअर एम्बुलेंस से ही ले जाए जा सकते थे । लेकिन उन दिनों भी बीजिंग से दिल्ली तक का एअर एम्बुलेंस का किराया सत्तर हजार अमेरिकी डालर था। इतनी धनराशि कहाँ से आएगी ? आगे की कथा रिम्पोछे के सचिव रह चुके सोनम वांगचुक के ही शब्दों में, ''भारतीय दूतावास यह धनराशि देना भी चाहे तो फाइलों की औपचारिकताएँ पूरी करते-करते महीनों लग जाते । नौकरशाही के तौर-तरीके तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ । रिम्पोछे अब राजदूत तो थे नहीं । उस समय बीजिंग में भारतीय राजदूत चन्द्रशेखर दासगुप्ता थे । वे चिन्तित तो थे लेकिन इतनी बड़ी धनराशि पर तो वे स्वयं भी निर्णय नहीं ले सकते थे । मैं दूतावास से वारिस जा ही रहा था कि दासगुप्ता का बुलावा आ गया। उन्होंने कुछ देर रुकने के लिए कहा और स्वयं तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल विहारी वाजपेयी से सम्पर्क साधने लगे । वाजपेयी जी उस समय विदेश यात्रा पर थे लेकिन किसी तरह उनसे सम्पर्क हो गया । बकुला रिम्पोछे की हालत सुन कर वाजपेयी ने तुरन्त सारी व्यवस्था करने और पैसों की चिन्ता न करने का आदेश दिया । जब दासगुप्ता ने यह सूचना मुझे दी तो मैं एक प्रकार से भारमुक्त हो गया । इतना ही नहीं वाजपेयी ने यह व्यवस्था भी कर दी कि रिम्पोछे को लेकर जैसे ही एअर एम्बुलेंस एअरपोर्ट पर पहुँचे, वहीं से उन्हें अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान ले जाने की सुविधा हो। (सोनम वांगचुक, ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 77-78)

दस अक्टूबर की रात को वे वापिस दिल्ली आ गए । दिल्ली के आयुर्विज्ञान चिकित्सा संस्थान में उनका इलाज शुरु हो गया । इस मृत्युलोक में विभिन्न रूपों में आते हुए उन्हें भी तो 2547 साल हो गए थे । उन्होंने भगवान बुद्ध से प्रण किया था कि जब तक बुद्ध मैत्रेय बुद्ध के रूप में इस संसार में पुनः प्रकट नहीं होंगे तब तक वे स्वयं भी बार-बार जन्म

ग्रहण करते रहेंगे । लगता था कि कुशोक बकुला की इस जन्म की यात्रा और कर्तव्य पूरा हो चुका था । उन्हें अपने अगले जन्म में पुनः लौट आने की तैयारी भी करनी थी । और एक दिन वे भी उसी रास्ते पर चले गए जिस रास्ते पर तीन महीने पहले उनका सन्यासी भाई राजा फुंछोक नमग्याल चला गया था । चार नवम्बर 2003 को मंगलवार के दिन उन्होंने दिल्ली में 86 वर्ष की आयु में अपनी देह त्याग दी । सन्यासी ने सत्रह साल पहले कहा था, अगली बार मिलेंगे तो भाई के तौर पर नहीं बल्कि सन्यासी के तौर पर मिलेंगे । लेकिन वह अवसर फिर नहीं आया । बकुला रिम्पोछे और सन्यासी दोनों की ही जीवन यात्रा पूरी हो गई थी ।

बकुला रिम्पोछे की नश्वर देह साकेत में उनके आवास पर रखी गई थी । किसी भिक्षु के मुँह से बरवस निकला, तिब्बत के लिए जो दलाई लामा हैं, लद्दाख के लिए वैसे ही कुशोक बकुला थे । अंतिम दर्शनों के लिए आने वालों का ताँता लगा रहा । कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गान्धी, जम्मू कश्मीर के राज्यपाल, मुख्यमंत्री, अनेक देशों के राजदूत अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करने के लिए आ रहे थे । तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए स्वयं जम्मू कश्मीर भवन में आए और उनके पार्थिव शरीर पर पुष्प अर्पित करते हुए कहा, कुशोक बकुला के बिना लद्दाख की कल्पना ही नहीं की जा सकती । जम्मू कश्मीर सरकार ने तीन दिन के राजकीय शोक की घोषणा की । रिम्पोछे का पार्थिव शरीर लद्दाख लाया गया । हवाई अड्डे से लेकर उनके पेठुप मठ तक के बारह किलोमीटर के रास्ते पर व्याकुल लोगों का सागर उमड़ आया था । मानों लद्दाख अनाथ हो गया हो । 16 नवम्बर रविवार के दिन पूरे राजकीय सम्मान के साथ पेठुप गोन्पा के महाकाल मंदिर के पास उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया । उनकी देह अग्नि की लपटों में समा गई । मंगोलिया के तत्कालीन प्रधानमंत्री एन एनखबायर ने कहा, ''मुझे बकुला रिम्पोछे का शिष्य होने का गर्व है। मंगोलिया के सच्चे मित्र, सरल हृदय निष्ठावान लामा

होने के नाते वे सदा हमारे दिलों में वास करेंगे । सहायता और आध्यात्मिक चेतना के लिए जो भी उनके पास गया, उन्होंने हर प्रकार से उनकी मदद की।'' (सोनम वांगचुक, ए विजनरी लामा एंड स्टेटसमैन पृष्ठ 93) चौदहवें दलाई लामा ने कुशोक बकुला के बारे में कहा, ''प्रख्यात शिक्षकों से सूत्र और तंत्र की शिक्षा प्राप्त करने और उन्हें अपने दैनन्दिन आचरण में ढालने के बाद उन्होंने कठिन प्रयास किया कि लद्दाख और मंगोलिया के आम जन के मन में भी ज्ञान का उदय हो । उन्होंने बुद्ध शाक्यमुनि के उपदेशों की रक्षा, संचार और पुनर्स्थापित करने के लिए परिश्रम किया । .... हमारे संकट काल में उन्होंने हम तिब्बतियों की जो सहायता की हम उसे सदैव याद रखेंगे । कुशोक बकुला के चले जाने से हम सभी को अपार क्षति हुई है। मेरी कामना है कि उनके श्रद्धालुओं के विश्वास और उनकी अपनी प्रार्थनाओं के प्रभाव के चलते शीघ्र ही उनका पुनः अवतार हो ताकि वे सांसारिक जीवों के दुख दूर करने के लिए अपने धर्म के क्रियाकलापों का उत्तरदायित्व संभाल सकें । (बकुला रिम्पोछे सोनम वांगचुक पेज 92)

आधुनिक लद्दाख के निर्माता कुशोक बकुला का उन्नीसवें अवतार के रूप में सांसारिक काम भी पूरा हो गया था और आध्यात्मिक कार्य भी । सन्यासी का तो पता नहीं लेकिन बकुला को तो एक बार फिर वापिस मृत्यु लोक में आना था ताकि अधूरे कामों को पूरा कर सकें। मंगोलिया में कुशोक बकुला के शिष्यों और श्रद्धालुओं की इच्छा थी कि उनकी भस्म का कुछ हिस्सा उलानबतार के पेठुप मठ में भी रखा जाए । यह मठ कुशोक बकुला का ही मठ था । उनकी इच्छापूर्ति के लिए उनके सचिव रहे सोनम वांगचुक सात जुलाई 2004 को उनका भस्मीकलश लेकर उलानबतार पहुँचे। वायुपत्तन से पेथुप मठ की दूरी पन्द्रह किलोमीटर है । रास्ते भर भस्मीकलश के दर्शन के लिये लालायित लोगों की भीड़ जमा थी। सभी की आँखों में आंसू थे । पेथुप मठ के बड़े हाल में भस्मीकलश आम आदमी के दर्शनों के लिए रख दिया गया । बाद में मंगोलिया के लोगों ने बकुला के भस्मीकलश को पचास टन चांदी के एक विशाल स्तूप में रख दिया ।

2005 में उनको श्रद्धांजलि देते हुए भारत सरकार ने लेह के विमानपत्तन का नाम कुशोक बकुला के नाम पर रखा । इस अवसर पर श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा, कुशोक बकुला आधुनिक लद्दाख के निर्माता थे । वे संप्रदाय सन्त, अध्यापक, देशभक्त, लोकप्रिय जन नेता, सच्चे बौद्ध और सबसे बढ़कर एक महान भारतीय थे । यह हवाई अड्डा हिमालय के उन्नत शिखरों को नीचे के संसार से जोड़ता है । इसलिए उस लद्दाख पुत्र और भगवान के दूत कुशोक बकुला से अच्छा नाम इसका और क्या हो सकता है ।

उपसंहार – कुशोक बकुला के उन्नीसवें अवतार की यात्रा पूरी हुई थी । अब वे कब और कहाँ अवतार लेंगे, इसकी परम्परागत ढंग से सूक्ष्म पड़ताल शुरु हो गई थी । अन्त्येष्टि के दौरान कुछ विशिष्ट चिह्न प्रकट हुए। अन्त्येष्टि के चौथे दिन जब कुछ भिक्षु एवं सामान्यजन अंत्येष्टि स्थल पर पवित्र राख का संग्रह करने के लिये गये तब वहां अप्रत्याशित रूप से हिमपात हुआ। हिमपात के दौरान हिम–पंखुडियां मात्र उस स्थान पर गिरीं, जहां भिक्षु श्वेत–वस्त्रों से आवृत थे, जबकि आकाश पूर्णतः साफ था। अंत्येष्टि–स्थल के अन्दर बालू पर युवा और वृद्धावस्था के पद–चिह्न दिखाई पड़े, जो उनके संभावित अवतार का संकेत था। पेथुप गोम्पा के आंगन में उन्नीसवें कुशोक बकुला रिंपोछे के सिंहासन के समक्ष आश्चर्यजनक रूप से अर्हत बकुला का प्रतीक नेवला प्रकट हुआ। आश्चर्य की बात यह थी कि वह शान्त रहा और वहां उपस्थित मानव समुदाय से भयभीत नहीं हुआ। बाद में नेवला गोम्पा में रिंपोछे के कक्ष में भ्रमण करने लगा और भिक्षु सेवकों द्वारा कुछ भी चीज देने पर उसे खाने और पीने लगा। यह विचित्र प्रसंग लगभग दो महीनों तक जारी रहा जब तक कि गोम्पा में रिम्पोछे की नवीन प्रतिमा का निर्माण और अभिषेक नहीं कर दिया गया। उक्त नेवले की लीला को भिक्षुओं द्वारा कैमरे में कैद कर लिया गया। वे छायाचित्र आज भी उनके कमरे में देखे जा सकते हैं। उन्नीसवें कुशोक बकुला के देह त्याग देने

के दो साल बाद 24 नवम्बर 2005 को लद्दाख की नुबरा घाटी के क्यागर ग्राम में एक बालक का जन्म हुआ। विभिन्न पद्धतियों से जाँच कर लेने के बाद यह निश्चित हो गया कि यही बालक उन्नीसवें बकुला का अवतार है । बालक का नाम तेनजिंग नवांग जिगमेत वांगचुक हुआ और उसे 6 अगस्त 2010 को लद्दाख के स्पितुक गोन्पा में अभिषिक्त किया गया ।

कुशोक बकुला के देहान्त के बारह साल बाद भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी 17 मई 2015 को मंगोलिया पहुँचे । दूसरे दिन रविवार को वे मंगोलिया की राजधानी उलानबतार में स्थित गंदान मठ में गए । उन्नीसवीं शताब्दी के इस मठ में साम्यवादी शासन के दिनों में भी पूजा–अर्चना होती रहती थी । प्रधानमंत्री ने इस मठ के प्रधान मठाधीश को बोधि वृक्ष की शाखा भेंट की । इससे बड़ा उपहार इस मठ को कोई दूसरा नहीं हो सकता था । यह वही मठ था जिसमें बैठकर उन्नीसवें कुशोक बकुला ने 1990 के कालखंड में मंगोलिया में पुनः बुद्ध बचनों का शंखनाद किया था । मंगोलिया की संसद को सम्बोधित करते हुए उन्होंने दोनों देशों के सांस्कृतिक सम्बंधों में कुशोक बकुला के योगदान का स्मरण किया । उन्होंने उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि बकुला रिम्पोछे ने भारत मंगोलिया सम्बंधों को मजबूत करने में ऐतिहासिक भूमिका निभाई । जो पेथुप मठ उन्होंने यहाँ स्थापित किया वह भारत और मंगोलिया के जीवन्त रिश्तों का प्रतीक है ।

घटनाक्रम

- जन्म – 19 मई 1917
- टुलकु के तौर पर पहचान–1922
- पढ़ने के लिए तिब्बत गए – 1927
- तिब्बत से वापसी– 1940
- जम्मू कश्मीर संविधान सभा के सदस्य (1951–1967)
- लद्दाख से भेदभाव को लेकर संविधान सभा में ऐतिहासिक भाषण – 12 मई 1952
- लेह में बौद्ध दर्शन विद्यालय की स्थापना की– 23 अक्टूबर 1959
- लोकसभा के सदस्य – (1967–1977)
- अल्पसंख्यक आयोग के सदस्य – (7 अगस्त 1978 – 11 दिसम्बर 1989)
- मनाली की गफ़ा में अपने सन्यासी भाई फुंछोक नमग्याल से मिले – 1986
- पद्‌मभूषण से सम्मानित – 1988
- मंगोलिया में राजदूत – (1990–2000)
- मंगोलिया का सर्वोच्च सिविल सम्मान **पोलार स्टार** मिला– 2001
- आत्मकथा का लेह में विमोचन – 17 सितम्बर 2001
- मृत्यु– 4 नबम्वर 2003

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Ahmad shah, Four years in tibet, Banaras, E j lazarus & Co. Banaras 1906

2. Crystal Mirror, volume VI, Dharma Publishing 1984

3. H.N. Kaul, Re-discovery of Ladakh, Delhi, Indus Publishing company

4. ICCR, International conference on Kushok Bakula Rinpoche - Saint and statesman, 2016

5. Kushok Bakula, Maya Joshi (ed), My life My times, Delhi, World Buddhist Culture Trust, 2006.

6. Nawang Tsering Shakspo and Henry M Vyner (ed) Kushak Bakula Rinpoche, saint and statesman, New Delhi , World Buddhist Culture Trust, 2006.

7- Nawang Tsering Shakspo, An insight into Ladakh, Shakspo, 1996

9- Namang Tsering Shakspo: "The role of incarnate Lamas in Buddhist tradition: A Brief Survey of Bakula Rinpoche's Previous Incarnations" in Tibet Review, Volume 2, 2016, page 22, [Dharamsala, India : Library of Tibetan Works & Archives]

10. Nirmala Bora, Ladakh: Society and Economy, Delhi, Anamika Publishers

11. Prem Singh Jina, Recent Researches on the Himalaya, Delhi, Indus Publishing company, 1997

12. Prem Singh Jina, Ladakh: The Land and the People, Delhi, Indus Publishing company.

13. Rann Singh Mann, Ladakh Then and Now: Cultural, Ecological and Political, delhi, Mittal Publications, 2002

14. Sonam Wangchuk Shakspo, Bakula Rinpoche - A visionary Lama and Statesman, delhi, published by the author, 2008

15. Sridhar Kaul & H. N. Kaul, Ladakh Through the Ages, Towards a New Identity - Delhi, Indus Publishing company.

16. Todd Lewis (ed) Buddhists: Understanding Buddhism Through the Lives of Practitioners, John Wiley & Sons

1. श्याम लाल रैना (सम्पादक) हमारा साहित्य, लद्दाख विशेषांक, जम्मू , जे एंड के अकादमी आफ आर्ट, कल्चर एंड लैंगुएजेज, 2002

2. रघुनन्दन प्रसाद शर्मा, प्रेरणा के अमर स्वर, दिल्ली, विश्व हिन्दु परिषद